1208 3224

आत्मतिलकग्रन्थ सोसायटी

पुस्तक नं. २७

महावीर शासन

लेखक—

पं. श्रीललितविजयजी

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

॥ अर्हम् ॥

आत्मतिलक ग्रन्थसोसायटी, पुस्तक नं. २७

महावीर शासन

लेखक–

श्रीमान् वल्लभविजयजी महाराजके शिष्यरत्न

पंन्यास श्रीललित विजयजीमहाराज

मारवाड के सादडी सहर–निवासी शा. सहसमल्ल पुनमचंद और

शा. दल्लीचंद मेघाजी, तथा मुंडारागांव निवासी

शा. चैनमल्ल गंगाराम प्रदत्त द्रव्य सहायसे

प्रकाशक–

आत्मतिलक ग्रंथसोसायटी

ठि. भारत जैन विद्यालय, पूना सीटी

वीर सं. २४४८] मूल्य छ आना [विक्रम सं. १९७८

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

लक्ष्मण भाऊराव कोकाटे यांनीं पुणें पेठ सदाशिव
घ. नं. ३०० येथें आपल्या 'हनुमान'
छापखान्यांत छापिले.

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

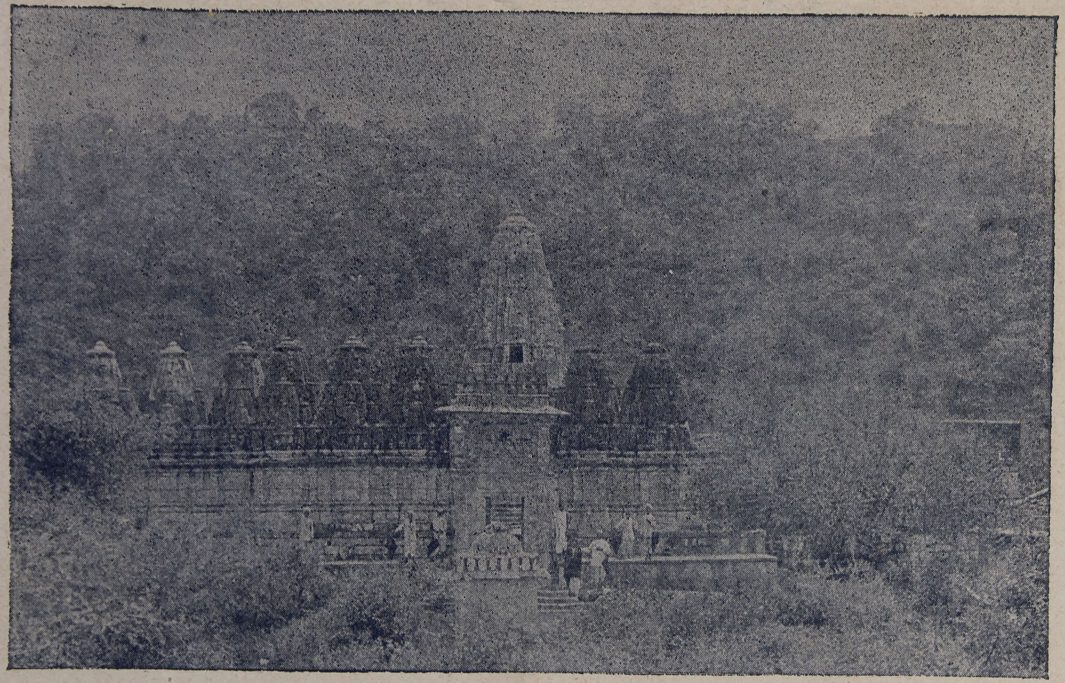

जोधपुर राज्यान्तर्गत ' बीजापुर ' (परगना 'बाली') के निकटवर्ती 'हस्ति तुण्डी'
प्रसिद्ध नाम 'राता महावीर' नामक प्राचीन जैन तीर्थस्थ जिन मन्दिर ।

Bhanwarlal Nahta Collection, www.jainelibrary.org

हस्ति तुण्डी तीर्थस्थ भगवन्मूर्ति ।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

॥ श्री ॥

महावीरदेव.

मेरे ख्यालसे वीरप्रभु के चरित के कहने के पूर्व इस बात का परामर्श करना ठीक होगा कि महावीर देव के पूर्व भारतवर्ष की दशा कैसी थी। आजसे असंख्य वर्ष पहले नवम और दशम तीर्थंकर देव का मध्यसमय भारतवर्ष के धार्मिक इतिहासमें कलङ्करूप था।

उस समय श्रीआदिदेव ऋषभनाथ स्वामी की स्थापन की हुई और तत्पश्चात् हुए हुए अजितनाथादि तीर्थंकरों की परिपुष्ट की हुई—धार्मिक-मर्यादा लुप्त होगई थी। भरतचक्री द्वारा निर्मित आर्यवेदों की शिक्षा का ह्रास ही नहीं बल्कि अभाव ही होगया था।

जिस भारतभूमिमें करुणारूप त्रिपथगा का विमल प्रवाह असंख्य वर्षोंसे चला आ रहा था, वहां उस समय दुर्वासनाओं की धूली उड रही थी।

जिस पवित्र निर्वाणजननी क्रिया को अनन्तज्ञानियों ने स्थापन किया था, उस का स्थान आडम्बरों से भरी हुई पुरोहितों (याज्ञिकों) की शिक्षाओं ने ले लिया था, अतः वह उत्तम क्रिया पैशाचिकरूपको धारण किये चली जाती थी। वेदवेत्ता पण्डितजन भी वेदऋचाओंका अर्थ भूलते जा रहे थे।

सर्व साधारण और श्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मण—पण्डित—वेदशास्त्राभ्यासी बाह्याडम्बरों में और स्वर्गसुखों के प्राप्त करने की लालसाओं में मुग्ध हुए पडे थे।

उस वक्त भारतवर्ष का जीवनप्रवाह कर्मकाण्ड—नास्तिकता—अथवा

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अज्ञान की तर्फ झुक रहा था, ब्राह्मणलोग प्राचीन काल के सुखों का स्वप्न देखते हुए और समय को न विचारते हुए दूसरी जातियों के स्वत्वों को छीन कर अपने अधिकार को बढाने का यत्न कर रहे थे।

परमार्थमार्ग और अध्यात्मविद्या को थोडे से इने गिने मनुष्य भी जानते हों इसमें भी पूर्ण शंका थी।

॥ प्रवाहमार्ग ॥

आत्मनिरीक्षण–निरीहक्रिया–अन्तरदृष्टि–ज्ञानयोग–अपवर्ग कामनादि विशुद्ध मानव कर्त्तव्यों को छोडकर यज्ञपूजा–संसार वृद्धिनिबन्धन पशुवध आहूति प्रदानादि क्रियाएँ सुखकर, सुगम और शास्त्रविहित मानी जाती थीं। ज्ञानप्राप्ति में उदासीनता होतीजाती थी, ज्ञानयोग के विपरीत कर्मकाण्ड का यथोचित पालन उनको स्वर्ग का देनेवाला प्रतीत होता था, परन्तु–वह यह नहीं समझते थे कि.

दयाधर्मनदीतीरे, सर्वे धर्मास्तृणाङ्कुराः
तस्यां शोषमुपेतायां, कियत्तिष्ठन्ति ते चिरम् ? ॥ १ ॥

सारांश यह कि स्वार्थरत और अज्ञान ग्रसित हिन्दुओं की दशा उस समय अत्यन्त शोचनीय थी।

जब जनता का हृदय इतना संकुचित हो तब वह कदापि श्रेष्ठतत्त्वों का अनुसरण नहीं कर सकती। ब्राह्मण–क्षत्रिय और वैश्य कर्मकाण्ड के यज्ञमें झूठे मोहसे स्वर्गकामना के लालची हुए हुए अपने आत्मिक सुखों के पराङ्मुख होकर आत्मा की ही आहूति दे रहे थे। आत्मोन्नति का रास्ता वह भुला बैठे थे। जडवाद की महत्ता और असंयतियों की पूजा चारों तर्फ अपना महत्त्व जमा रही थी। अखिल जनसमाज को अपनी दृष्टि–अपना हृदय-अपना मन–और अपनी आत्मशक्ति–ब्राह्मणों की सेवा में ही लगा रखने की जबरदस्ती फर्ज समझी जाती थी। यही लोगों-

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

का परमधर्म समझा जाता था। " वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः " इस वाक्य-को ईश्वर वाक्यसमान अटल अबाध्य माना जाता था।

॥ अवतारी का आगमन ॥

उस समय जब कि भारतवर्ष की धार्मिक तथा सामाजिक अवस्था बडी ही बुरी थी। सुधारे का बालसूर्य दुर्दशारूपी रात्रीका नाश करने के, लिये उदय हुआ ! ! ! ।

क्षत्रियकुंण्ड नगर जो कि इक्ष्वाकु राजाओं की राजधानी थी, वहां विक्रम संवत् से ५४२ वर्ष पूर्व सिद्धार्थ राजा की स्त्री त्रिशला की कुक्षि-से एक प्रतापी बालक का जन्म हुआ, जिसको भारतवर्षमें ही नहीं बल्कि त्रिलोकी भरमें धर्म की—शुभकर्म की—नीति की—आर्य रीति की—पारमा-र्थिक सुखों की एवं शुभवासनाओं की वृद्धि करनी थी। उस बालक का नाम " वर्धमानकुमार रक्खा गया, परन्तु वह बाल्यावस्था में प्रसन्नता-से परीक्षापूर्वक इन्द्रादि देवताओं के दिये हुए वीर अथवा महावीर नाम से ही अपने जीवन के अन्त तक प्रसिद्ध रहा। महात्मा महावीर जन्मसे ही सूर—वीर—व गंभीर—मातापिता के परम भक्त—प्रजावत्सल—दानशौण्ड और वदान्य थे।

आप तीन ज्ञानसंयुक्त थे, सर्व विद्यापारंगत थे, तथापि मोहवशीभूत होकर आपके मातापिता आपको शास्त्राध्ययन कराने के लिये किसी पाण्डित के पास ले गये, आप मनमें अहंकृति न कर सब कुछ देख रहे थे. जब यह घटना इन्द्रमहाराजने देखी तो वह मनही मन हसते हुए वहां आये जहां कि वीर कुमार पण्डित के मकान पर जा रहे थे, इन्द्र ने अपने ज्ञान से देखा कि इन इन बातोंका पण्डित को जन्म से संशय है तो, उन्हीं बातों की वीर परमात्मा से पृच्छा की, परमात्मा तो अपौ-रुषेयज्ञानी थे अर्थात् सामान्य मनुष्यों से असंख्य गुणाधिक ज्ञानशक्ति के धारक थे, इन्द्र के पूछने पर बडी गंभीरता से उन प्रश्नों का आपने

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

समाधान किया। पण्डित प्रभृति सर्वजनों के आश्चर्य का पार नहीं रहा ! ! ! उस वक्त इन्द्र महाराज ने वीर कुमार की आत्मशक्ति का परिचय दिलाते हुए कहा—

मनुष्यमात्रं शिशुरेष विप्र ! । नाशंकनीयो भवता स्वचित्ते ।
विश्वत्रयीनायक एष वीरजिनेश्वरो वाङ्मपारदृश्वा ॥ १ ॥

इनका विचारशील मन बालकपनसे ही पृथ्वी के वास्तविक लाभों के प्राप्त करनेमें था। दीनात्माओं की दुर्दशा को देख आपके उदारमन पर बडा आघात होता था।

उस वक्त के आडम्बरों को देख आप समझते थे कि यह धर्म नहीं किन्तु धर्म के नाम से अज्ञता है, परन्तु सब कार्य देशकाल की अनुकूलता को पाकर ही सुधरते हैं।

आपको संसार का उद्धार करना सदा से प्रिय था, अतः आपने सुख को तिलाञ्जलि देकर जगत को सुधारना तथा शान्ति देनी ठान ली, इस विचार को दृढ करके आपने राज्य—स्त्री—परिवार—मालमिलकत—स्वजनबन्धुओं—का परित्याग कर के—तीन अबज—अठासी क्रोड—अस्सी लाख—सोनाहियों का दान देकर संसार को छोड दिया।

॥ आत्मभोगपर स्तुत्यसन्धा ॥

आपका सिद्धांत था कि—"यदाराध्यं यत्साध्यं, यद्ध्यायं यच्च दुर्लभम्। तत्सर्वं तपसा साध्यं, तपो हि दुरतिक्रमम् ॥ १ ॥" जो चीज आराधना करने योग्य है, जिसकी साधना मे तन मन धन की आहुति दी जाती है, जो योगियों के भी ध्यान करने योग्य है, जो चीज संसारमें अति दुर्लभ है. वह सब तपोबल से साध्य है, तप निकाचित कर्मकी गति को भी रोक सकता है, परंतु तपकी शक्तिको कोई नहीं रोक सकता, तपसे आत्मा की अनन्त शक्ति का प्रादुर्भाव होता है, अर्थात् तपस्या के करने से मनुष्यको केवल ज्ञान केवल दर्शनकी प्राप्ति भी हो सकती है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इस वास्ते आपने साढे बारां वर्ष १५ दिन वो घोर तप किया कि जिसको सामान्य आदमी एक दिन तो क्या ? बल्कि एक घडीभर भी न कर सके । तप करते हुए आपने ६=६ महिने तक अन्न और पानी नहीं लिया । साढे बारां तक क्या रात और क्या दिन, प्रायः खडेही खडे निकाले । लोगोंने आपके पाओंको चुल्हा बनाकर रसोई बनाई आपके कानोंके साथ हिंसक मांसाहारी क्रूरपक्षियों के पिंजरे बांधे कानों में कीले गाडे, आंख नाक कान वगैरह कोमल मर्मस्थानोंमें धूल भरदी. देवताई मानुषिक–सर्पादिकृत जिन उपद्रवों को आपने सहन किया है उनके सहन का बल आत्मधैर्य सहिष्णुभाव आपके सिवाय अन्य प्राकृतिक मनुष्य का न हुआ है और न होगा, इतना करते हुए भी निराशारूपी अंधकार उन्हें अंशसे भी घेर नहीं सका । सत्यरूपी प्रकाश का उदय हुआ कि– केवल ज्ञान कहीं दूर नहीं था । आप वीतराग हुए, सर्ववित् हुए, सर्वज्ञ– सर्वदर्शी हुए, और संसारको अपनी शिक्षा देने का उद्यम करने लगे ।

[सार और साफल्य]

आपकी शिक्षा थी कि प्रत्येक मनुष्य–चाहे वह उच्चजाति का हो चाहे नीच जातिका हो मोक्षका अधिकारी है, जो मनुष्य पवित्रतापूर्वक जीवन व्यतीत करता है और अनाथों अनाश्रितोंपर दया करता है उसको यज्ञोंद्वारा देवताओंकी प्रसन्नता करने की अपेक्षा इस क्रियासे अधिक लाभ है, और अधिक लाभ भी सिर्फ अन्नादिके दानकी वृत्तिको लेकर है वरन् पशुवध तो घोर दुःख का हेतु है ।

फिर आपका फरमान था कि मनुष्य की वर्तमानदशा उसीके कर्मोंका फल है, यह कर्म चाहे इस जन्म के किये हों चाहे पूर्वजन्म के । अध्यात्म दशाके विचारसे आपका फरमान था कि जीवनका अधिकांश दुःखरूप है चाहे वह अपने को कितना भी सुखी क्यों न मानता हो । इस

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

लिये मनुष्य को वह कार्य करना चाहिये कि जिससे वह पुनरागमनसे सदाके लिये मुक्त होकर निर्वाण को प्राप्त हो जाय, अर्थात् सांसारिक कदर्थनाओं से सदा के लिये छूट जाय। यह फल यज्ञों की सबल क्रियाओं द्वारा अथवा अनाथ पशुओं को निर्दय होकर अग्निमें झोक देने से कभी नहीं मिल सकता।

हाँ पवित्रतापूर्वक जीवन गुजारने से और वासनाओं के दबानेसे हो सकता है।

राजा और किसान, ब्राम्हण और शूद्र, आर्य और अनार्य, अमीर और गरीब, सबही वीर परमात्मा की शिक्षाओं को प्रेम से सुनते थे, आपके ज्ञानकी प्रभा बिजली की तरह मनुष्यों के हृदयपर तत्काल असर कर जाती थी।

जो लोग सिर्फ तमाशा ही देखनेको आते थे, आपके अपूर्वज्ञानके चमत्कार से चकित हो जाते थे। श्रद्धालुओं की तरह उन मनुष्योंपर भी आपका प्रभाव पडता था।

[॥ परिवार परिचय ॥]

परमात्मा महावीर देवने पहले पहल अपापा नगरी में उपदेश किया था, वहाँ इन्द्रभूति १ अग्निभूति २ वायुभूति ३ वगैरह ११ विद्वान् ब्राह्मण यज्ञक्रिया के करने के लिये एकत्र हुए हुए थे, उनको प्रभुने सत्यमार्ग समझाकर अपने आद्य शिष्य बनाये। ये सर्व पण्डित ४४००——शिष्यों सहित प्रभुके चरणारंविन्दोंमें आकर दीक्षित हुए थे।

प्रभु खुद राज्य त्याग कर मुनि हुए थे इसलिये जिन का नाम आगे लिखा जायगा वह चेडा, श्रेणिक, उदायन, वगैरह राजा प्रभुके भक्त बने थे।

परमात्मा के संसारासारतादर्शक उपदेशको सुनकर ९९ क्रोड सोना

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

मोहरें ३२ स्त्रियां का त्याग कर **शालिभद्र** उनके शिष्य हुए थे। शालिभद्र के अलावा और भी अनेक राजपुत्र जैसे कि **मेघकुमार अभयकुमार** आदि, अनेक श्रेष्ठिपुत्र जैसे कि **धन्नाकुमार** और **धन्नाकाकंदी**, प्रमुचरणोंमें दीक्षित हुए थे।

आपके पांचकन्याणक जिन का वर्णन आगे लिखा जायगा उनमें ६४ इन्द्र सहपरिवार हाजिर हुआ करते थे, परन्तु उनपरभी आपको आसक्ति नहीं थी।

आपका मुख्य सिद्धांत था कि संसारक्षेत्रमें सत्यमार्ग खोजनेवालेको अपना जीवन उच्च बनाना चाहिये। उन्होंने अपने शिष्योंको इस कदर उपदेशद्वारा स्थिर किया था कि मरणान्तकष्टके आनेपर भी वह धर्मसे विचलित नहीं होते थे।

आपके संप्रदायमें अनादि स्वभावके अनुसार स्त्री और पुरुष सभी कल्याणमार्गको अखत्यार कर सकते थे। दीक्षित पुरुष—आर्य, मुनि, साधु, तपस्वी, ऋषि, भिक्षुक, निर्ग्रन्थ, अनगार और यति आदिके नामों से पहचाने जाते थे, और दीक्षित स्त्रिया—आर्या, भिक्षुणी, साध्वी, तपस्विनी निर्ग्रन्थी आदि नामों से पहचानी जाती थी। आपके निर्वाण के बाद भी गौतमादि आपके शिष्योंने, उसमे भी खास करके सौधर्म स्वामीने आपकी शिक्षाओं का याथातथ्यरूपसे प्रवाह प्रचलित रक्खा था।

परमात्मा के आगम अर्धमागधी भाषामें थे, और १४ पूर्वों की विद्या संस्कृतभाषा में थी।

आपके निर्वाण के बाद कितना ही अरसा बीतजानेपर आपके वाक्यों-की होती हुई छिन्नभिन्न दशाको अच्छे रूपमें स्थापन करनेके लिये **मथुरा** नगरीमें और **वल्लभीमें** सभाएँ हुई थीं, मथुरा की सभामें मुख्य नियामक **स्कन्दिलाचार्य** थे, और वल्लभीपुरकी सभामें मुख्य नियन्ता **देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण** थे।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आपके शासन की ध्वजा संप्रति नरेशने और कुमारपाल सोलंकीने बहुत दूरतक फरकाई थी।

[प्रासंगिक]

रथ चक्रके समान गतिवाले इस संसारमें जिस जिस समय धर्म क्रियाओंका ह्रास होता है उस उस समय भव्यात्माओं के पुण्य प्रकर्षसे संसार में उत्तम पुरुषोंका जन्म होता है। वह उत्तम जीवात्मा **तीर्थंकर तीर्थनाथ विश्वनायक** कहे जाते हैं। जिन विशुद्धात्माओं ने इस पदवी पाने के तीन भव पहिले प्रकृष्ट तप आदि बीस अथवा उनमें से कतिपय सत्कृत्यों को सतत सेवन करके तीर्थंकर नामकर्म दृढ बांधा हुआ होता है वही महापुरुष इस पदवी को हासिल कर सकते हैं।

ये अवतारी पुरुष जिस जन्मदात्री माता की कुक्षि में गर्भरूपसे स्थित होते हैं, वह माता इन भावी भाग्यशालियों की सूचनारूप चतुर्दश स्वप्नोंको देखती है।

तीर्थंकर देवों की पांच अवस्थाओं का नाम **कल्याणक** है, जिन के नाम यह हैं—

(१) च्यवनकल्याणक, २—जन्मकल्याणक, ३—दीक्षाकल्याणक, ४—केवलज्ञानकल्याणक, ५—निर्वाणकल्याणक।

इन पांचही कल्याणकों में देवेन्द्रादि असंख्य देव देवी आकर देवाधिदेव परमात्मा के गुणग्राम भक्ति शुश्रूषा करते हैं।

जन्मकल्याणक के समय सर्व इन्द्र परमेश्वर को सुमेरु पर्वत पर ले जा कर उन का स्नात्र महोत्सव करते हैं और बडी भक्ति से पूजा रचाते हैं। तदनन्तर बडी हिफाजत से उन्हें माता के पास रखकर अपने उपकारी के जन्म की खुशियें मनाते अपने २ स्थानों में चले जाते हैं। अन्य भी अनेक प्रसंगों पर देवेन्द्र, महर्द्धिक देव, और देवियें प्रभु के दर्शन और सदुपदेश का लाभ लेने को आया करते हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

केवल ज्ञान के बाद जब समवसरण की रचना होती है तब देवेन्द्र चक्रवर्ती सपरिवार उपासना भक्ति में हाजिर होते हैं।

ऐसे धर्म साम्राज्यशाली देवाधिदेव एक एक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालमें चौवीस चौवीस होते हैं। वर्त्तमान चौवीसीमें–१–श्रीऋषभ देवजी, २–श्रीअजितनाथजी, ३–श्रीसंभवनाथजी, ४–श्रीअभिनन्दनजी, ५–श्रीसुमतिनाथजी, ६–श्रीपद्मप्रभुजी, ७–श्रीसुपार्श्वनाथजी, ८–श्रीचन्द्रप्रभुजी, ९–श्रीसुविधिनाथजी, १०–श्रीशीतलनाथजी, ११–श्रीश्रेयांसनाथजी, १२–श्रीवासुपूज्यजी, १३–श्रीविमलनाथजी, १४–श्रीअनंतनाथजी १५–श्रीधर्मनाथजी, १६–श्रीशान्तिनाथजी, १७–श्रीकुंथुनाथजी, १८–श्रीअरनाथजी, १९ श्रीमल्लिनाथजी, २०–श्रीमुनिसुव्रतस्वामीजी, २१–श्रीनमिनाथजी, २२–श्रीनेमिनाथजी, २३–श्रीपार्श्वनाथजी, २४–श्रीवर्द्धमानस्वामी।

इनमें से जो अन्तिम तीर्थंकर वर्द्धमान स्वामीजी हैं, उनका प्रसिद्ध नाम है **महावीरदेव**, वर्त्तमान कालमें जो शासन चलता है, इस के संचालक यही प्रभु हैं। इस देवाधिदेव के एकादश गणधर थे, जिनके नाम—

१–इन्द्रभूति (गौतम स्वामी) २–अग्निभूति, ३–वायुभूति, ४–व्यक्त, ५–सुधर्म, ६–मण्डित, ७–मौर्यपुत्र, ८–अकंपित, ९–अचलभ्राता, १०–मेतार्य, ११–प्रभास, यह ११ ही मुनि श्रीमहावीर के मुख्य शिष्य थे। महावीर परमात्मा के निर्वाण के दूसरे ही दिन गौतमस्वामी को केवल ज्ञान पैदा हुआ था। कुछ वर्षों के पीछे सुधर्मा स्वामी को केवल ज्ञान पैदा हुआ था।

इन्द्रभूति (गौतम) और सुधर्मास्वामी के अलावा नव ही गणधर महावीर प्रभु की हयाती में ही मोक्ष चले गये थे। गौतमस्वामी की अपेक्षा भी श्रीसुधर्मस्वामी दीर्घायु थे इस लिये प्रभुने गण

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

श्रीसुधर्मस्वामीजी के ही सुपुर्द किया था। गौतमस्वामी और शेष सभी गणधर राजगृही नगरी के रहनेवाले चौदह विद्याविशारद ब्राह्मण थे।

[॥ तत्त्वज्ञानियोंकी आत्मकथा ॥]

जब श्रीमहावीर परमात्मा को केवल ज्ञान पैदा हुआ उसवक्त वे सब मिलकर नगर के बाहिर यज्ञ कर रहे थे। उसी अवसरमें महावीरको केवल ज्ञान पैदा हुआ था अत एव महा वीर प्रभुका ज्ञानोत्सव करने के लिये आकाश मार्गसे उतरते हुये देवता ओं को देखकर गौतमादि ब्राह्मण और उनके शिष्य पंक्ति के ४४०० ब्राह्मण इस बात कीं निहायत खुशी मनाने लगे कि हमारे किये इस यज्ञ के प्रभाव से ये सब देवता आ रहे हैं। परन्तु वे जब सर्व यज्ञ पाटक को छोडकर आगे बढे तो सबको संशय हुआ कि ये देवता कहाँ जाते हैं? लोगोंसे पूछा तो मालूम हुआ कि ये सब सर्वज्ञ को वन्दना करने जारहे हैं। यह सुनकर इन्द्रभूति को बडा आमर्ष हुआ। वह सोचने लगा—संसार में आज मेरे सर्वज्ञ होने पर भी दूसरा सर्वज्ञ है कि जिसके पास ये सब दौडे जारहे हैं? बडे आश्चर्य की घटना तो यह है कि इस वक्त परमपवित्र यज्ञमण्डप भी इन्हे नजर नहीं आता!! क्या जानें क्या कारण है कि यज्ञपर इनको अन्तर प्रेम ही नहीं जागता?। अस्तु जैसा वह सर्वज्ञ होगा वैसेही ये देवता भी होंगे। भ्रमर को सुगन्धित फूलोंपर और कौओंको निम्बकी निंबोलियों पर ही प्रेम हुआ करता है।

परमात्माके दर्शन कर वापिस लौटते हुए लोगों को इन्द्रभूति ने कुछ हंसकर पूछा क्यों भाई! सर्वज्ञ देखा? कैसा है? जवाबमें उन्हों ने सिर हिलाकर कहा—क्या पूछते हो? तीन लोक के सर्व जीवात्मा गिनती करने लगें, आयुकी समाप्ति न हो! गणित को परार्धसे भी आगे बढाया जाये तो भी उस ज्ञानसागर के गुणों की गणना करना असंभव और अशक्य है। अरे आश्चर्य। महदाश्चर्य!! वाहरे धूर्त!! किसीने

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

मूर्ख मनुष्यों को ठगा, किसीने स्त्रियों को, किसीने बाल और गोपालों को परन्तु तूने तो चतुर मनुष्यों को, और विबुध कहलाते हुये देवताओं को भी जालमें फंसाया ! अच्छा खद्योत और चन्द्र का प्रकाश सूर्यके आगे कितनी देर ठहरेगा ? । अभी आता हूं, तेरे साथ विवाद करके तुझे परास्त करता हूं ।

एक म्यान में दो तलवारें, एक ही गुफामें दो सिंह, या एक गगन में दो सूर्य, कभी किसीने देखे या सुने हैं ? ।

इस प्रकार विविध आडम्बरों को दिखाता हुआ इन्द्रभूति अपने पांचसो ५०० शिष्यों को साथ लेकर प्रभुके पास आया । प्रभु अपने ज्ञानसे उसका नाम गोत्र और गुप्तरहा हुआ उसके मनका संशय जो कि उसने सर्वज्ञत्व की क्षति के भयसे किसी के पास आज तक जाहिर नहीं किया था उसे भी जानते हैं ।

गौतम आकर जब सम्मुख खडा रहा तब "**हे गौतम ! इन्द्रभूते त्वं सुखेन समागतोसि ?**" इस तरह प्रभु उसको बुलाते हैं । महावीर के मुखसे अपने नाम और गोत्र को सुनकर गौतम ने विचार किया, अरे ! यह तो मेरे नाम गोत्र को भी जानता है । अथवा जगद्विख्यात मेरे नाम को कौन नहीं जानता ? अगर यह मेरे मनोगत सन्देह को कहे तो जानूं कि यह सच्चा सर्वज्ञ है ।

गौतम के मनोगत भाव को जानकर त्रिकालवित् महावीर देव कहते हैं हे विद्वन् ! तेरे मनमें "**जीव है या नहीं ?**" इस बात का संशय है और उसका कारण वेदमें रही हुई.—

"विज्ञान घन एव एतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवाऽनुविनश्यति न प्रेत्य संज्ञास्ति"

और—"सवै अयं आत्मा ज्ञानमयः" इत्यादि । तथा—"द द द" अर्थात्—दमो दानं दया इतिदकारत्रयं यो जानाति स जीवः ॥

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

ये दो ऋचाएँ हैं। पहिली ऋचासे जीव का सर्वथा अभाव प्रतीत होता है, और दूसरीसे जीव की सिद्धि भी हो सकती है। साधक और बाधक प्रमाणों के मिलनेसे तुह्मारा मन संशयान्दोलित होर हा है, परन्तु इन ऋचाओं का यथार्थ अर्थ तुम्होरे ख्यालमें नहीं आया, सुनो हम तुमको इनका परमार्थ समझाते हैं।

"विज्ञानघन" यह आत्मा का नाम है। जब आत्मा घटपटादि किसी भी चीज को देखती है तब वह उपयोग रूप आत्मा इन्द्रियगोचर पदार्थों को देखती सुनती है या किसी भी तरहसे अनुभव गोचर करती है, उसवक्त उन अनुभवगोचर पदार्थोंसे ही उस उस उपयोगरूप से पैदा होती है और उन पदार्थों के नष्ट होजानेपर या दूर होजानेपर वह उसरूप अर्थात् घटपटादि पदार्थ परिणत आत्मा उस उस उपयोग से हट जाती है, उस हालत को लेकर कह सकते हैं कि उन उन घट-पटादि भूतों से अर्थात् भूतविकारों से उपयोगरूप वह आत्मा उत्पन्न होती है, उनके बिखर जाने पर उनमेंही लय होजाती हैं।

"न प्रेत्य संज्ञाऽस्ति" पहिले जो घटपटादि उपयोगात्मक संज्ञा थी, फिर वह कायम नहीं रहती, उन पदार्थों से हटकर आत्मा अन्यान्य जिन२ पदार्थों में उपयोगरूप से परिणत होती है उस उस पदार्थ के रूपसे नई संज्ञा कायम होती है, इस समाधान से और प्रभुके जगदद्वैत साम्राज्य के देखनेसे इन्द्रभूति (गौतम) ने दीक्षा स्वीकार करली। इन्द्रभूति वीर परमात्माके प्रथम शिष्य हुए। इस बात को सुनकर अग्निभूति, वायु-भूति आदि सर्व पण्डित अपने अपने परिवार को लेकर आये। मनोगत संशयों को निवृत्त करके उन सबने जगद्गुरु महावीरदेव के पास संयम अखत्यार किया। प्रभुने इन एकादश मुख्य पंडितों को अपने गणधर कायम किये। और गच्छ का मालिक सुधर्मा स्वामीको ही बनाया।

गौतमस्वामी प्रभुके निर्वाण के दूसरे ही दिन केवली होकर १२ वर्षतक

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

संसारमें अनेक उपकारों को करते हुये भूमंडलपर विचरते रहे और प्रभुके निर्वाण के २० वर्ष पीछे सिद्धि गति को प्राप्त हुए। सुधर्म स्वामी के पाटपर श्रीजम्बूस्वामी बैठे। बस जम्बूस्वामी महाराज ही अन्तिम केवली कहे गये हैं।

जम्बूस्वामी का इतिहास परिशिष्ट पर्व भाग पहिले से और साहित्य संशोधक भाग तीसरे से जान सकते हैं।

पहले इस बात का सामान्यतया उल्लेख हो चुका है कि-जैनधर्म के प्रवर्त्तक हरएक तीर्थंकर की पांच अवस्था विशेष को जैन पारिभाषिक शब्दोंमें कल्याणक कहते हैं। वीर परमात्मा का जीवात्मा **नयसार** के भवमें सम्यक्त्व से वासित होकर २६ भव अन्यान्य गतियोंमें भोगकर सत्ताईसवें भवमें **त्रिशला राणी** की कुक्षिमें आकर पैदा हुये, इतने वृत्तान्त-का नाम च्यवनकल्याणक है। अनादि काल के अवासित प्राणीने पहिले पहिल मुनि का दर्शन करके किस उच्च आशय से उनका सत्कार किया है किस धर्मप्रीति से वह उनसे वर्त्ताव करता है, उसका अनुभव करने-वालों के लिये हमारे परमोपकारी गुरुमहाराज की बनाई "महावीर पंचकल्याणक" पूजा की पहिली ढाल यहां लिखी जाती है—

(दोहा)

जब से समकित पाइये, तब से गणना आय।
वीरजीव नयसार के, भव में समकित पाय ॥ १ ॥

(सारंग कहरवा हमे दम दे के चाल)

समकित आतम गुण प्रगटाना, । टेक ।
समकित मूल धरम तरु दीपे ।
विन समकित न चरण नवि ज्ञाना ॥ स० १ ॥
अपर विदेहे नृप आदेशे ।
काष्ठ लेने नयसार का जाना ॥ स० २ ॥

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

भोजन समय में निरखत अतिथि
पुण्ययोग युग मुनि हुओ आना ।। स० ३ ।।
धन्य भाग्य मुझ मन में चिंती ।
निरवद्य आहार पानी दिया दाना ।। स० ४ ।।
जोग जानी मुनि देशना दीनी,
पाया समकित लाभ अमाना ।। स० ५ ।।
द्रव्य मारग बतलाया मुनि को ।
भाव मारग किया आप पिछाना ।। स० ६ ।।
आतम लक्ष्मी कारण समकित
हर्ष धरी वल्लभ मन माना ।। स० ७ ।।

जिनेश्वर देव का माता की कुक्षिसे जन्मना, संसार भर के जीवों को उस समय आह्लादित होना, इन्द्रासनों के चलायमान होनेपर असंख्य देव देवियों का राजा सिद्धार्थ के घर आना, लोकाधार उस बालक को सुमेरु पर्वत पर ले जाना, और जन्मोत्सव करना, पीछे जाकर बालकको माता के पास रखना, मंदार प्रभृति के पुष्पों से प्रभुकी अर्चा करना, धनधान्य से प्रभु के माता पिताओं के निवासगृह की पूर्तिकरना, माता पिता कृतजन्मोत्सव, नामस्थापना, पाठनविधि का उपक्रम तथा युवावस्था में माता पिता के स्वर्गारोहण के पश्चात् अपने बडे भाई नन्दीवर्धन से पूछकर दीक्षा लेने के पहिले पहिल का महावीरका जितना वृत्तान्त देखो उसको जन्मकल्याणक के अन्दर ही समझना चाहिये । जन्मकल्याणक की शुरूआत नीचे की ढाल से होती है ।

(दोहा)

जन्म समय जिनदेव के, जनपद सुखिया लोक ।
वायु सुखकारी चले, आनन्द मंगल ओक ॥ १ ॥
चैत्र शुकल तेरस भली, ऋक्ष उत्तरा जोग ।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

मध्यरात्रि जिन जनमिया, पूर्ण पुण्य फल भोग ।। २ ।।
शान्त दिशा सब दीपती, त्रिभुवन हुओ प्रकाश ।
छप्पन दिशि कुमरी मिली, आई चित्त हुलास ।। ३ ।।

[देश-त्रिताल-लावणी]

जनमें जिनदेव-मति-श्रुत-अवधि-ज्ञानी
पूरण जस पुण्य की अद्भुत एह निशानी ।। ज०
अड थान से छप्पन दिशि कुमरी मिल आवे,
देखी प्रभु झगमग ज्योति अति हर्षावे ।
अधोलोक की आठ संवर्त्तक वायु चलावे,
एकयोजन भूमि अंदर अशुचि उडावे ।
वरसावे आठ ऊर्ध लोक कुमरी फूल पानी ।। ज० १ ।।
पूरव दक्षिण पश्चिम उत्तर इम चारे,
क्रम से अठ अठ कुमरी निज काज संभारे ।
दर्पण कलशालि पंखा चामर धारे,
चउ विदिशि की चउ दीप धरे उजीयारे ।
चउ मध्य रुचक की आवे कुमरी सयानी ।। ज० २ ।।
कदलीघर तीन बनाय विधि से करती,
मर्दन पूरवघर स्नान दक्षिणे धरती ।
उत्तर घर रक्षा बन्धन को अनुसरती,
जिन जिन अम्बा नमी भाव पाप को हरती ।
जीवो चिरकाल जिनंद वदे मुख वानी ।। ज० ३ ।।
इम छप्पन दिशि कुमरी प्रभुके गुण गाती,
करके निजकल्प अनादि सदन निज जाती ।
धन्य देवजन्म हम प्रभुभक्ति से मनाती,

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आतम लक्ष्मी कारण समकित चमकांती ।
हर्षे वल्लभ प्रभु देख मुख सुख दानी ॥ ज० ४ ॥

नन्दीवर्धन की अनुमति, वरसीदान, पंचमुष्टिलोच, चतुर्थज्ञान की प्राप्ति, साढे बारह वर्ष की अति कठिन तपस्या, विहार और भयंकर परीषह, उपसर्गों की तितिक्षा यावत् केवलज्ञान सें पहिले पहिले का जितना वर्णन है वह सब तीसरे दीक्षाकल्याणक में ही समझना चाहिये । विशेष स्पष्टता के लिये नीचे लिखे पाठ को पढो ।

(दोहा)

जाने निज दीक्षा समय, पिण लोकान्तिक देव ।
कल्पकरी प्रभु बूझवे, करते प्रभुपद सेव ॥ १ ॥
जय जय नंदा भद्द हे, जगगुरु जगदाधार ।
धर्म तीर्थ विस्तारिये, मोक्षमार्ग सुखकार ॥ २ ॥

(लावणी)

वरसी दान देवे जिन-राज महा दानी रे । टेक अंचली ॥
अनुकंपा गुणधार, जन को द्वारिद्र टार ।
जिन हाथे दान ग्रहे भव्य तेह प्रानी रे ॥ व० १ ॥
एक कोडी आठ लाख, एक दिन दान आख ।
संवछर तक इसविधि दान मानी रे ॥ व० २ ॥
वर्ष दोय होए पूरे, पूरे प्रतिज्ञा में सूरे ।
गेहवास वर्ष तीस रहे प्रभु ज्ञानी रे ॥ व० ३ ॥
नगर सजावे राय, थावे इन्द्र हाजर आय ।
विधि से करावे स्नान इन्द्र इन्द्रानी रे ॥ व० ४ ॥
देव के कलश सारे नृप के कलश धारे ।
स्नान नन्दिवर्धन करावे हर्ष आनी रे ॥ व० ५ ॥

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

वीर प्रभु सज होवे, आतम लक्ष्मी जोवे ।
वल्लभ हर्षमन दीक्षा जिन पानी रे ।। व० ६ ।।

अनेकानेक प्रकार के दुस्सह कष्टों को समतापूर्वक सहन करके केवलज्ञान का पाना, देव देवेन्द्र, राजा, महाराजा, सेठ, साहूकार और १२ ही पर्षदाओं का एकत्र होना, धर्मोपदेश द्वारा तीर्थस्थापना का करना, अन्यान्यदेशों में फिर कर अनन्त बहिरात्माओंको अंतरात्मा बना कर उन के हृदयों में धर्मबीजका बोना, यावत् निर्वाण के पहिले पहिले के चरितांश का नाम केवलज्ञान कल्याणक है । सुनिये-ध्यान दीजिये—

(दोहा) संयम शुद्ध प्रभाव से, तीर्थंकर भगवान ।
दीक्षा समये ऊपजे, मनपर्यव शुभ नाण ।।१।।
विचरे देश विदेश में, कर्म खपावन काज ।
परिषह अरु उपसर्ग को, सहते श्री जिनराज ।।२।।
गोसाला गोवालिया, चंड कोसिया नाग ।
सूलपाणि संगम दिया, सहिया दुःख अथाग ।।३।।
सुदि दशमी वैशाख की, उत्तर फाल्गुन जान ।
शाल वृक्ष नीचे हुओ, निर्मल केवल भान ।। ४ ।।

(वसंत—होई आनन्द बहार)

आज आनन्द अपार रे प्रभु केवल पाया ।
केवल पाया घाती खपाया ।। आज० अंचली ।।
उग्रविहारी जगत में रे, जिनवर जग जयकार रे ।।प्र० १।।
धर्मध्यान धोरी बनी रे, ध्यान कुशल लिया लार रे ।।प्र० २।।
ध्यान ध्येय ध्याता मिली रे, काढे घाती चार रे ।।प्र० ३।।
प्रगटे केवल ज्ञानके रे. प्रगटे आतम सार रे ।। प्र० ४ ।।
आतम लक्ष्मी पामीया रे, वल्लभ हर्ष अपार रे ।। प्र० ५ ।।

बस तीस वर्ष गृहस्थावस्थाके, साढे बारह वर्ष १५ दिन छद्मस्थावस्थाके,

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

पंद्रह दिन कमती साढे उनतीस केवली अवस्था के कुल ७२ सालकी सर्वायु पूर्णकर वीर परमात्मा अपापापुरी में आते हैं। योगनिरोध करनेके पहिले अन्तिम धर्मोपदेश को फरमाते हैं। अन्तिम क्रिया जिसका नाम योगनिरोध है उसके बलसे योगातीत हालत को प्राप्त कर विनश्वर शरीर को त्याग कर प्रभु निर्वाण पधारते हैं। गौतम स्वामीका विलाप, इन्द्र और देवोंका घोर शोक, नन्दीवर्धनका रुदन, प्रभुका अग्निसंस्कार करके इन्द्रोंका नन्दीवर्धन को दिलासा देकर प्रभुकी दाढाओं को लेना, नन्दीश्वरतीर्थकी यात्रा करके देवदेवियों का अपने स्थानों पर जाना, यह सब निर्वाण कल्याणक की क्रिया है।

पहिला कल्याणक आषाढ सुदी ६ दूसरा चैत्र सूदी १३ तीसरा मार्गशीर्षवदी १० चौथा वैशाख सुदी दशमी १० पांचवाँ कार्तिकवदी १५। खुलासा नीचे दर्ज है—

(दोहा)

तीस तीस घर केवली, छद्म अधिक कुछ बार।
पूर्णायु प्रभु वीर का, बार साठ निरधार ॥ १ ॥
वसुधातल पावन करी, ऊन वर्ष कछु तीस।
निकट समय निर्वाण को, जानी श्रीजगदीश ॥ २ ॥
पचपन शुभफल के कहे, पचपन इतर विचार।
प्रश्न करे छत्तीस का, बिन पूछे विस्तार ॥ ३ ॥

(कव्वाली)

प्रभु श्रीवीराजिन पूजन, करो नरनारी शुभभावे ॥ अ० ॥
किया उपकार जो जगमें, कथन से पार नहिं आवे।
तजी भवी मान सब अपना, नमन करी नाथ गुण गावे ॥१॥
सहस छत्तीस साधवीयां, सहस चउद साधु गण थावे।
केवली वैक्रिय सत सत सो, वादी सय चार कह लावे ॥ २ ॥

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

ओही मन पर्यव ज्ञानी, तेरांसो पांचसो भावे ।
पूरव चउदधारी शत तीनो, चउदसो साध्वी शिव जावे ॥ ३ ॥
श्रावक एक लाख व्रत धारी, एगुण सठ सहस बतलावे ।
श्राविका लाख तिग सहसा, अठारा सूत्र फरमावे ॥ ४ ॥
प्रभु परिवार परिवारिया, अपापा नगरी दीपावे ।
अमा कार्त्तिक रिख स्वाति, प्रभु निर्वाण सुख पावे ॥ ५ ॥
आतमलक्ष्मी पति स्वामी, हुए निजरूप उपजावे ।
अटल संपत् प्रभु पामी, वल्लभ मनहर्ष नहीं मावे ॥ ६ ॥

[उच्च जीवात्माओंके उच्च जीवन की उच्च घटनायें]

॥ दया दृष्टि और दीनोद्धार. ॥

परमात्मा चारित्र लेकर देशदेशान्तरोंमें विहार कर रहे हैं । उन्होंने देखा कि अमुक विकट अटवीके अमुक स्थलमें "चंडकौशिक" नामक दृष्टिविष सर्प रहता है । उस क्रूराशयवाले अज्ञानी जीवने आज तक असंख्य निरपराधी जीवोंकी जीवनयात्राको समाप्त कर दिया है । उसकी तीव्र दृष्टिज्वालासे भस्मसात् होकर पक्व फलोंकी नाइं पक्षिगण धडा धड नीचे गिर रहे हैं । इस मयसे उस जगहका आकाशमार्ग भी बन्द हो चुका है । संख्यातीत जीवोंके प्राणोंका शत्रु होकर, वह बिचारा निपट नरकातिथि हो रहा है । यह सोचकर प्रभु उसके उपकारके लिये उसी कनखल आश्रमकी तरफ जहाँ कि वह सर्प रहता था चल पडे । मार्गमें जाते समय ग्वालोंने उनको रोका और संपूर्ण वृत्तान्त उस सर्पका कह सुनाया, और साथमें यह भी कह दिया कि इस मार्गके बदले दूसरा भी मार्ग है जो थोडा बाँका होकर जाता है, आप उधर होकर जाइये जिससे आपको शारीरिक आपत्ति न भोगनी पडे ।

महावीरने ज्ञानद्वारा जान लिया कि यह पामर जीव पूर्वकृत दुष्कृतोंके

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

प्रभावसे सर्वभक्षी हो रहा है "परोपकारः पुण्याय" यह सनातन पथ मुख्य तया हमारे लिये ही है। अन्तमें आप निर्भीकावस्थासे उसी रास्ते होकर* चण्डकौशिकके बिल पर जा खडे हुए। सर्प मनुष्यका आना देखकर क्रुद्ध हुआ और बिलसे बहिर निकल कर सोचने लगा। अरे! जहाँ मेरे भयसे आकाशमार्ग भी बन्द हो रहा है वहाँ यह मनुष्य! सो भी मेरे द्वार पर!!

बस कहना ही क्या था? एक तो सर्प और वह भी दृष्टिविष। पहिले तो उसने लाल आँखें करके प्रभुपर आँखोंका जहर छोडना शुरू किया। और जब इस कियासे थक गया, तब महावीर प्रभुके चरण पर डंक मारा। भगवद्देव उस दुःखसे जराभी दुःखी नहीं हुए, जरा नहीं घबराए। सत्य कहा है "कल्पान्तकालमरुता चलिताचलेन किं मन्दराद्रि शिखरं चलितं कदाचित्?।" परिणाम यह हुआ कि उस उत्कटरोषी महा अपराधी सर्पको परमेश्वरने शान्त किया। जगद्वत्सल प्रभुके प्रभावसे उसे जन्मान्तरका ज्ञान हुआ। परमात्माके समक्ष पन्द्रह दिनकी महा तपस्या करके प्रभुके सुधामय उपदेशको सुनकर वहक्रूर काय सर्प १५ दिन के पश्चात् इस रौद्र शरीरका त्याग कर आठवें देवलोक में पहुँचा।

"सिक्तः कृपासुधा वृष्ट्या, वृष्ट्या भगवतोरगः।
पक्षान्ते पञ्चतां प्राप्य; सहस्रारदिवं ययौ॥ १॥"

(त्रिशष्टिश पु. च.)

पूज्य—पूजक समाज.

प्रभुकी हयाती में अठारह देशके राजा जैनधर्म के प्रतिपालक थे। श्री महावीर प्रभुके मामा चेटक (चेडाराजा) जो कि विशाला नगरीके

---

* "अवश्यं चैष बोधार्ह इति बुद्ध्या जगद्गुरुः। आत्मपीडा मगणय न्नृजुनेव पथा ययौ॥ १॥

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

मुकुटबद्ध राजा थे, उन्होंने प्रभुके समक्ष गृहस्थाश्रमके योग्य श्रावकके बारह व्रत धारण किये थे। मगध देशके स्वामी **श्रेणिकराजा** तो आप के परमभक्त ही थे। उनका लडका कूणिक (अशोकचन्द्र) जो कि बापकी मृत्युके बाद चंपानगरीमें राज्य करने लगा था, बडा प्रतापी साम्राज्य-शाली शुद्ध जैनधर्मी राजा था ॥ २ ॥ उज्जैनी का नरेश चन्डप्रद्योत महावीर देव का गाढ भक्त था।

पंजाब के पश्चिम भागमें "वीतभयपत्तन" जिसे आज कल भेरा कहते हैं एक बडा आबाद और अकलीम शहर था वहाँ का राजा **उदयन** शुद्ध श्रावक था। **कूणिक** (अशोकचन्द्र) का उत्तराधिकारी **उदायी** राजा जैनधर्ममें बडा ही चुस्त था, और महावीर भगवानकी शिक्षा-ओंको पूर्णप्रेम से पालता था। अन्तमें प्रभुके पास दीक्षा लेकर मोक्षाधि कारी हुआ था। **प्रदेशीराजा** प्रभु को बडे जलूस के साथ वन्दन करनेके वास्ते आया था। राजा **दशार्णभद्र** जहाँ तक गृहस्थाश्रम में रहा पूर्णप्रेम से प्रभुसेवा में तत्पर रहा, और अन्तमें जगद्गुरु महावीर परमात्माकी दीक्षा लेकर कल्याणभाजन हुआ। भगवद्देवके निर्वाण समय अपापा नगरी में किसी कारणवशात् अठारह राजा एकत्र हुए थे, ये सब जैन धर्मी थे।

॥ महर्धिक श्रावक ॥

(१) वाणिज्य ग्रामका रईस **आनन्द** नामा जमीनदार आपका श्रावक था, इस के पास बारह करोड सुवर्ण मुहरें और चालीस हजार गायें थीं। यह व्यापार कर्ममें बडा प्रवीण था। इसके पाँचसौ जल-यान् (जहाज) समुद्रमार्गसे भ्रमण किया करते थे। और पाँचसौ गाडि यें लकडी घास वगैरह के लिये रहती थीं।

(२) **कामदेव** श्रावक जो कि चंपानगरीका रहनेवाला था इसके यहाँ १८ क्रोड अशरफियाँ और ६० हजार गायें थीं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

(३) बनारस का चुल्लनीपिता नामक श्रावक भी १२ व्रतधारी था, इस के पास भी २४ क्रोड सुवर्ण मोहरें और ८० हजार गायें थीं।

(४) सुरादेव श्रावक भी बनारस का ही रहनेवाला था। उसके यहाँ १२ क्रोड़ सुवर्ण मोहरें और २६००० गायें थीं।

(५) चुल्लशतक श्रावक आलंभिका नगरी का एक प्रसिद्ध व्यापारी था उसके पास १२ क्रोड सुवर्ण मोहरोंकी और ६००० गौओंकी संपत्ति थी।

(६) कुण्डकोलिक श्रावक कांपिल्यपुर का रहने वाला था। उसकी हैसियत १२ क्रोड सुवर्णमोहरोंकी और ६००० गौओं-की थी।

(७) पोलासपुर नगर का रहनेवाला सद्दालपुत्र (कुँभार) प्रमुख श्रावक था, तीन क्रोड अशरफियें और ५०० मट्टीके बरतनोंकी दुकानें इसकी दौलत थी।

(८) आठवें श्रावक का नाम महाशतक था। यह राजगृही का रहीस था, इसके पास २१ क्रोडसोनैयें और ८००० गायें थीं। इस श्रावक की १३ स्त्रियाँ थीं। प्रधान स्त्रीका नाम रेवती था। यह एक बडे दौलतमंदकी लडकी थी। इसको इसके बापकी तरफसे ८ क्रोड सोनैये और ८००० गायें दहेजमें मिली थीं।

(९) ऐसे ही सावत्थीका रहनेवाला नन्दिप्रिय श्रावक भी बडा खानदान और दौलतमन्द था।

(१०) सावत्थीका रहनेवाला तेतलीपिता भी १२ क्रोड सोनैयों की और ४००० गौओं की हैसियत भोगता था।

इसके अलावा धन्ना, शालिभद्र, धन्नाकाकंदी वगैरह अबजोंपति साहूकार महावीर प्रमुके सेवक थे। जंबुकुमारने ९९ कोटि सोनैयें छोड कर ५२६ स्त्रीपुरुषोंके साथ प्रमुके शिष्य सुधर्मा स्वामीके पास दीक्षा ली थी।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

॥ परमात्माका संदेश ॥

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं; श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत् ॥ १ ॥

संसार में प्राणिमात्र को सुख इष्ट है, और दुःख अनिष्ट है । विकलेन्द्रियसे लेकर इन्द्रपर्यंत सर्व प्राणी सुख के अभिलाषी हैं, परन्तु सुख की प्राप्तिके साधनों को कैसे संपादन करना, इस बात का समझना जरा कठिन है । कितनेक विचारे मोहमूढ पुद्गलानन्दी जीव अपने सुख के लिये दूसरे को दुःखमें डालने के उपाय करते हैं । कोई एक धनके नष्ट होनेपर अन्याय चोरी आदि अनाचार करते हैं । कितने ही प्रथम झूठ बोल कर जब किसी प्रसंग में खूब तंग हो जाते हैं तो फरेब कर मुक्त होना चाहते हैं । निःपापको सपाप और पापीको निष्कलङ्क बनानेका उद्यम करने में अपना कौशल प्रकट करते हैं । अपने माथे पर चढ आये हुए आपत्तिके बादल जब दूसरे किसी पर बरस जाते हैं तो धर्महीन अज्ञ खुशी मनाते फूले नहीं समाते हैं । परन्तु वे यह नहीं समझते कि—

अवश्यमेव भोक्तव्यं, कृतं कर्म शुभाशुभम् ।
न क्षीयते कृतं कर्म कल्पकोटिशतैरपि ॥ १ ॥

(वास्ति) राग द्वेष के दृढ आवेश में आकर धर्म से सर्वथा निरपेक्ष होकर यदि पापाचरण किया जावे तो उस कर्मका परमाणु मात्रसे मेरु होकर भी छूटना कठिन हो जाता है । अपने दोषको न देखकर सिर्फ दूसरे जीवात्माको संताप देकर और आप खुद अकृत्यसे निवृत्त न होकर अपने अमूल्य जीवनको व्यर्थ करने में भी मनुष्य पीछे नहीं हटता ! ! ऐसी दशामें उसे उपदेश का देना, सन्मार्गका बतलाना व्यर्थ है । इस विषयमें आचार्य श्री हरिभद्र सूरिजीका एक सूत्र मनन

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

करने योग्य है उन्होंने योग्य मनुष्य को उपदेश देनेका अधिकार वर्णन करते समय कह दिया है कि–

" ये वैनेया विनयनिपुणैस्ते क्रियन्ते विनीताः,
नावैनेया विनयनिपुणैः शक्यते संविनेतुम् ।
दाहादिभ्यः समलममलं स्यात्सुवर्ण सुवर्ण,
नायस्पिण्डो भवति कनकं छेददाहक्रमेण ॥ १ ॥"

अर्थः—जो मनुष्य स्वभावसे ही विनयनिपुण होगा उसे ही उपदेष्टा विशेष ऊंचे दर्जेपर चढा सकता है। जो स्वभाव से ही कठोर परिणामी है, छली है, छिद्रान्वेषी है, परवंचक है, उसे कोटि उपदेश भी मार्गगामी नहीं कर सकते !

इस बात पर आचार्य एक प्रत्यक्ष दृष्टान्त देते हैं कि जो सुवर्ण कुछ अन्य कुधातुओंसे मिश्रित है परन्तु है जातिका सुवर्ण उसी को तेजाब वगैरहके योग से शुद्ध कुन्दन बनाया जा सकता है। परन्तु जो है ही लोहेका टुकडा उसको छेद–दाह–ताडन, तापनादि अनेक उपाय कर के भी कोई सुवर्ण नहीं बना सकता। कहावत है कि " सौमन साबन मलके धोवे गर्दभ गाय न थाय "

॥ संसार स्वरूप ॥

ध्यान हुताशन में अरि ईंधन, झोक दियौ रिपु–रोक निवारी ।
शौक हर्यो भविलोकन कौ वर, केवलज्ञान मयूख उघारी ॥
लोक अलोक विलोक भये शिव, जन्म जरा मृत पंक पखारी ।
सिद्धन थोक बसे शिव लोक, तिन्हें पग धोक त्रिकाल हमारी॥१॥

किसी भी राष्ट्र समाज या धर्मकी उन्नति का प्रधान कारण तद्विषयक शिक्षा ही है। सुशिक्षितों को ही अपने अपने देश समाज धर्मकी यथार्थ परिस्थितिका भान हो सकता है। वही उसका उपाय सोच सकते

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

हैं। ऐसे सुशिक्षित मनुष्य जिस जातिमें जितने ज्यादा होंगे उतना ही अपना—अपने राष्ट्रका समाज का या कुटुम्बका भला कर सकेंगे।

वर्त्तमान समयमें देखो जापान जो एशिया के हर्ष का वर्द्धक हो रहा है। उसका कारण आज शिक्षाप्रणाली के सिवाय अन्य क्या माना जा सकता है ? जैसे सूर्य तुम्हारे सामने चक्कर लगाता हुआ दृष्टिगोचर होता है ठीक उसी प्रकारसे सारा संसार नीचेसे ऊपर ऊपरसे नीचे उदयसे अस्त अस्तसे उदय इन पर्याय धर्मों का वेदन करता चला जा रहा है।

संसार का कोई पदार्थ स्थिर नहीं सृष्टि क्रम यह बता रहा है। समय यह कह रहा है कि वह एक न एक दिन नीचे आयेगा, गिरेगा, उसकी जरूर अवनति होगी जो ऊपर गया है, इस विकराल कालकी चालसे बचे हैं तो परमात्मा बचे हैं, बाकी सर्व संसारी जीवोंका चाहे वह इन्द्रसे भी ऊपरके अहमिन्द्र क्यों न हों ? एक रास्ता है।

संसार और संसारी जीवात्माका ऊपर जाना नीचे आने ही के लिये है। जैसे उन्नति का अन्त अवनति पर ठहरा हुआ है वैसे ही अवनति के बाद अवश्य उन्नति है।

इस नियमका उल्लंघन वह कर सकता है जो संसारसे मुक्त होगया है, वरन् संसार उसीका नाम है जो कोई इस नियम का उल्लंघन न कर सकता हो। कवियों की मान्यता है कि जो जल समुद्र से उठकर भाप होकर बादल बन कर अहंकार से मत्त हुआ हमारे ऊपर आकाश में घूम रहा है, इतना ही नहीं, बल्कि—गर्जना और तर्जना कर रहा है, कौन नहीं जानता कि वह एक न एक दिन नीचे आवेगा, और वहाँ जायेगा जहां से आया था।

बस यह संसार ही नहीं किन्तु संसार चक्र भी है। आपने अब इसका मतलब अच्छी तरह समझ लिया होगा, अधिक कहना श्रोताओं की बुद्धि-की अवज्ञा करना है। कवि कालिदासने लिखा है—

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

" यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना—
आविष्कृतोऽरुणपुरस्सर एकतोऽर्कः ।
तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां,
लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु ॥१॥"

प्रिय बन्धुओ ! जो गिरा हुआ है उसकी अवश्य उन्नति होगी, मान लो कलियुग इसी लिये आया है कि सतयुग का मार्ग साफ और निष्कण्टक बनजाय ।

समय की परिस्थिति ।

देखो कालकी गति कैसी विचित्र दीख पडती है, जब यहां दिन होता है तो अमेरिका में रात होती है । ठीक इसी प्रकार से जब उन्नति का सितारा भारत वर्षपर चमकता था तो अमेरिका वगैरह का कोई नाम भी नहीं जानता था ।

शासन नायक वीर प्रभु के निर्वाणके कुछ वर्ष पीछे अशोक राजा का पौत्र सम्प्रति नरेश हुआ कि जिसने अपने अखंडशासन के बलसे अमेरिका प्रभृति देशों में भी " स्याद्वाददर्शन " का प्रचार किया । उन उन देशों में अपने सुशिक्षित उपदेष्टाओं को भेज कर जैन धर्मके उन गूढ तत्वों को समझाया जो उन के लिये अश्रुत पूर्व थे । आज भी उन देशों में से निकलती हुई तीर्थंकर देवों की प्रतिमायें इस सत्य घटना की बराबर सत्यरूप से गवाही दे रहीं हैं ।

विद्या और दान

इस वक्तव्य का सारांश यही निकला कि संसार का (संसार वर्त्तिपदार्थ मात्र का) परिवर्त्तन स्वभाव है । जिस जनपद का नेता न्यायशील होगा, जहां की जनता अपने हेयोपादेय की समझने वाली होगी, उस का अवश्य उदय होगा । प्राचीन समय में लोग विद्याव्यसनी

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

होते थे, धन व्यय करने में उदारता प्रकट करते थे, इससे वह अपने समाज के ह्रास के कारणों को देखते ही तत्काल उपाय करलेते थे। आज कल यद्यपि लोग धनसम्पत्ति से सुखी हैं तो भी तादृशज्ञान सम्पदा के न होने से देशका जैसा चाहिये वैसा भला नहीं हो सकता।

हालां कि आज भी भारत के दानवीर दान देने में अपनी प्राचीन उदारता से पीछे नहीं हटे। ऐतिहासिक साधन साक्षी देते हैं कि हमारा यह सभ्य संसार पैसा खर्चने में किसी तरह से भी हाथ पीछे नहीं हटाता।

॥ आदर्शजीवन ॥

यदि कोई हमसे पूछे कि जीवन का अलङ्कार क्या है? तो हम निःसंकोच होकर कह सकते हैं कि चरित्र ही जीवन का एक मात्र अलंकार है। चरित्र आत्मा की एक विशेष शक्ति है, इसी शक्ति के प्रभाव से हमारी नीच भावनाओंका दमन होता है, हृदय के अपवित्र भाव दूर होते हैं, हम पवित्रता प्राप्त करनेके लिये व्याकुल हो उठते हैं, और सत्यकी खोज में प्राण तक देनेको तैयार हो जाते हैं। इसी शक्तिबल के प्रभाव से हम भीषण प्रलोभनोंका सामना करने के लिये खडे होजाते हैं, सम्राट की अपकृपा से भी विचलित नहीं होते, और कठोर जीवन संग्राम में जयलाभ प्राप्त कर सकते हैं। संसार में जितने प्रतिष्ठित व्यक्ति होगये हैं वे सब इसी अद्भुत शक्तिबल के प्रभाव से पूज्य हुए हैं। धन और ऐश्वर्य द्वारा किसी व्यक्ति ने किसी कालमें भी महत्ता प्राप्त नहीं की। चरित्र ही महत्ता प्राप्त करने का एक मात्र सोपान है।

यह ईश्वर प्रदत्त शक्ति है, यही विश्वका नियंता है, इसी के भयसे चन्द्र सूर्य उदय होते हैं, वायु संचालन करती है, इसी से निर्मल पवित्रता का स्रोत प्रवाहित होकर पापमय जगत को स्वर्गभूमि में परिणित कर देता है; वही इस अद्भुत शक्ति का जन्मदाता है। नहीं तो क्षीण

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

काय दुर्बल मनुष्य किस बलसे बलवान् होकर वह सारे स्वार्थों और अपने प्राणोंतक के विसर्जन कर देने में भी कातर नहीं होता।

एक न्यायका अनुष्ठान करने से सारा संसार तुम्हारी सहायता करने के लिये तैय्यार हो जावेगा। उस न्यायानुष्ठान के प्रतिष्ठिति करने में तुम्हारा सर्वस्व ही क्यों न चला जावे तो भी तुम्हारे हृदय में लेशमात्र भी कष्ट न होगा किन्तु एक अन्याययुक्त आचरण करनेसे तुम्हें सौ बिच्छुओंके काटने समान पीडा होगी। तुम्हारा हृदय अशान्तिका घर बन जावेगा और तुम संसारको नरक के समान भीषण स्थान समझोगे, तब तुम सोचोगे कि तुम संसार में अकेले हो, सारा संसार तुम्हारी ओर घृणापूर्ण दृष्टिसे देख रहा है, कोई भी तुम्हें आश्वासन द्वारा शान्ति देनेके लिये प्रस्तुत नहीं। संसारके संपूर्ण व्यक्ति गण तुम्हारी पापमय संगति से दूर भागना चाहेंगे। इसी प्रकार न्याय और अन्याय में भी भेद है, भगवान का भक्त भारी विपत्ति में भी अन्याय का परित्याग कर के न्याय का अनुसरण करता है, इस का और कोई कारण नहीं वह न्याय के बीच परमात्माकी शक्ति देखकर ही उसपर अनुराग करता है।

॥ शिक्षा का प्रयोजन ॥

अनेक मातापिता अपने पुत्रको इस आशा से पाठशाला में भेजते हैं कि मेरा बेटा पढ़लिख कर कोई ऊंचा पद प्राप्त करेगा, किन्तु उन्हें स्मरण रखना चाहिये कि उनका पुत्र चरित्र गठन ही से ज्ञानी बन सकता है। इस विषय की उपेक्षा करना अपनी संतान पर घोर अन्याय करना है। चरित्र गठन ही शिक्षा का मूल उद्देश्य होना चाहिये। यह बात सत्य जान पडती है कि विद्वान् होने से उच्च पदकी प्राप्ति होती है, किन्तु चरित्र के अभाव में वह उच्चपद सुरक्षित नहीं रह सकता।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अत एव पुत्रको चरित्रवान् बनाने के लिये चरित्र गठन पर ध्यान रखना मातापिताका प्रधान कर्त्तव्य है।

सम्राट से लेकर एक सामान्य किसान के बालक को अपने व्यवसाय में सफलता प्राप्त करने के लिये ज्ञान और चरित्र की अत्यन्त आवश्यकता है। इतने विवेचन से सिद्ध हुआ कि क्या राजकुमार और क्या किसान के बालक दोनों को शिक्षित होना बहुत आवश्यक है।

अनेक व्यक्तियोंकी धारणा है कि पैतृक व्यवसाय अथवा किसी अन्य व्यवसाय में शिक्षा की आवश्यकता नहीं है। मैं पूछता हूँ कि मानव समाज को अज्ञान के घोर अन्धकार में रखनेका किसे अधिकार है? किसान के बालक और राजकुमार के अन्तःकरण में जिस प्रमाण से ज्ञानप्रभा प्रकाशित होती है उसी परिमाणानुसार हमारे कार्यकी सिद्धि होती है। चरित्रवान किसान का बालक क्या चरित्रवान् राजकुमारके समान सुन्दर नहीं है? तब फिर एक को शिक्षा देकर दूसरे को उससे वंचित रखनेवाले तुम कौन हो? यह बात अवश्य स्वीकार की जा सकती है कि व्यवसायसंबंधी शिक्षा सबको एकही सी नहीं दी जासकती। राजकुमारको राजनीतिसंबन्धी, और किसान के बालक को कृषिसंबन्धी ही शिक्षा देना उचित है, किन्तु जो शिक्षा ज्ञानवान् बनाती और चरित्र गठन करती है वह सब एक ही ढंगकी देना उचित है, इसी शिक्षा का नाम शिक्षा है।

॥ परमार्थ और देशसेवा ॥

खान की मिट्टी जिसको खान में से खोदकर उसके टुकडे टुकडे किये जाते हैं, इतना ही नहीं नरन् उसको गधों पर चढाया जाता है; पानीमें भिजो कर उसे पैरोंनीचे मन्थन किया जाता है, चक्रपर चढाकर खूब घुमाया जाता है तो भी शाबासी है उस सहनशील जाति को कि जो इतने

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

कष्टों को सहन करती हुई भी पात्र बन कर संसारकी स्वार्थसिद्धि करती है ।

और भी सुनिये, कपास के डोडोंको तोड कर धूप में और धूल में फैंक देते हैं, उसकी अस्थियें तोडकर सार निकाल लिया जाता है, उस सारभूत कपास को भी धूप में फेंक कर खूब तपाया जाता है । मार मार कर इसके पीछे पीछे जुदे किये जाते हैं, यंत्र में वीली जाती है, पिता–पुत्र का आजन्म वियोग किया जाता है, लोहे की शूलीपर चढाया जाता है, अनेक औजारों से मारी पीटी जाती है तो भी वह उपकारी पदार्थ वस्त्र बन कर कुल संसार भरके नरनारियोंके गुप्त प्रदेशों को ढकती है । तो अरे–निसार ! अरे संसारसार जीवन ! मनुष्य ! सचेतन होकर अमूल्य मानवभव से कुछ भी निज पर का उपकार न करेगा तो तुझे और क्या कहें ? एक कविता नीचे दर्ज है उसे सुनता जा बाद तेरी मरजी—

मनुष्य जन्म पाय सोवत विहाय जाय,
खोवत करो रनकी एक एक घरी है ॥

किसीने यह लुकमान से जाके पूछा जरा इसका मतलब तो समझाइयेगा ।

जमाने में कुत्ते को सब जानते हैं,
वफादार भी उसको सब मानते हैं,
ये करता है जां अपने मालिक पे कुरबाँ,
खिलाना है बच्चों का घर का निगाहबाँ ॥
भरा है यह खूने महब्बत रगों में,
न देखा सगों में जो देखा सगों में ॥
पडे मार खाकर भी यह दुम दबाना,
कि दुशवार हो जाय पीछा छुडाना ॥
जगत्में है मशहूर इसकी भलाई ।
मगर नाममें है क्या इसके बुराई ॥

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

किसी आदमीको कहें हमजो कुत्ता ॥
तो मुंहपर वहीं दे पलटकर तमाचा ।
कहा उससे लुकमान ने बात यह है ॥
खुली बात है कुछ मुहम्मा नहीं है ।
यह माना है बेशक वफादार कुत्ता ॥
बडा जाँ नीसार और गमख्वार कुत्ता ।
फकत आदमी पर है यह जानेसारी ॥
मगर कौमकी कौम दुश्मन है भारी ।
यह रखता है दिलमें मुहब्बत पराई ॥
खटकते हैं इसकी निगाहोंमें भाई ।
नजर आवे इसको अगर गैर कुत्ता ॥
तो फिर देखिये इसका तौरी बदलना ॥
न जिसने कभी कौमको कौम माना ।
कहे क्यों न मरदूद उसको जमाना ? ॥
बुरा क्यों न मानेंगे अहते हमीयत ।
कि—औरोंसे उलफत सगोंसे अदावत ॥

॥ विमर्श--परामर्श ॥

भारत वर्षमें शुभकार्यों के लिये रुपये की कमी नहीं है, किन्तु हम लोगोंमें देशभक्ति तथा परोपकारी मनुष्यों का अभाव है, जिनके विना हम लोगोंको समितियों तथा सुधारके कार्योंमें बाधा पडती है । "शास्त्रों" में विद्यादान सबसे उत्तमदान कहा गया है इसी लिये जो लोग इस पुण्यकार्य अर्थात् सार्वजनिक शिक्षा प्रदान का यत्न करेंगे वह वास्तव में धर्मात्मा कहे जा सकते हैं । भारत सन्तान अपने दान एवम् उदारता के लिये प्रसिद्ध है । पुराने भग्नमन्दिर आदि चारो ओर ढहढेमिला

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

रहे हैं ! और नये मन्दिरो और धर्मशालाओं के बनाने में एवं परस्पर-के खिलाने पिलाने में अनुचित रीतिसे " देश का अपरिमित धन व्यय किया जा रहा है। यदि वही धन उचित रीतिसे शिक्षा की उन्नति में व्यय किया जाय अर्थात् देशको उन्नति के शिखरपर पहुंच जाने में अधिक काल नहीं लगेगा। साधारण गणना से प्रतीत होता है कि इस समय " महाराजाओं, राजाओं जागीरदारों रइसों तथा साधारण मनुष्यों " के दानकी संख्या प्रतिवर्ष सत्तर करोड से कम नहीं है। इस अनन्त धन का उचित रीतिसे व्यय होना चाहिये ! इस कार्य की सिद्धि के निमित्त प्रत्येक देशवासी को उचित है कि अपनी लेखनी द्वारा लेख प्रकाशित कर तथा उपदेशोंकी सहायता से जनसमूह तथा रइसों का उपकार करें।

साम्प्रदायिक नियंत्रणा

किसी भी सम्प्रदाय के ऐतिहासिक वर्णनों का अवलोकन करने से प्रायः इस बात का पता लगता है कि सम्प्रदाय की डोरी नेताओं के ही हाथ में रही है। नेताओं से हमारा आशय धर्म प्रचारकों से है। और विशेष कर यह लोग साधु; संन्यासी; पोप पादरी; पण्डित; राज-गुरु प्रभृति नामों से विविध वेशों से पहिचाने जाते हैं। उन में से जिस किसीने जिस धर्मको अपना मानकर स्वीकृत किया है वह उसकी हर प्रकार से रक्षा करता है जिस प्रकार कृषक बडी सावधानी से अपने क्षेत्र की निगहबानी रखता हुआ अन्यान्य पशुपक्षियों तथा यात्रियों से बचाने की योजना करता है। इसी प्रकार वह धर्मनायक भी अपने सम्प्रदाय को बलिष्ठ बनाने के प्रयत्न में लगा रहता है।

हां ! इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि भारत वर्ष में छप्पन लाख साधुओं की संख्या मानी जाती है और इन का मार विशेष कर गृहस्थों पर ही है। इनमें से सन्मार्ग का सदुपदेश देनेवाले कितने हैं ?

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

और अनर्गलशब्दों का प्रयोग कर तथा उत्तम पदार्थों को खाकर मानव जीवनको इतिश्री तक पहुंचाने वाले कितने हैं ?

पहिले समय के साधु अपने कर्मक्षेत्र—तप जप ज्ञान ध्यान—ब्रह्मचर्य्य —आतापना विनय आदि योगों में विचर कर अनेकानेक तरह की शक्तियाँ प्राप्त करते थे; और उनके बलसे अपने शासनकी ध्वजा पताका फहराते थे।

॥ आत्मशक्ति ॥

शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है कि चार ज्ञान के धारक उसी जन्म में जिनकी मोक्ष होनेवाली है, ऐसे श्रीगुरु गौतमस्वामी जब सूर्य की किरणोंका सहारा लेकर अष्टापद पर चढे तब वहां जो १५ सौ तपस्वी तप कर रहे थे, उन्हों ने उनके चमत्कार को देखकर श्रद्धापूर्वक उन को प्रणाम कर अपने गुरु मान लिये। नीचे उतरने पर उन सबने हाथ जोडकर पूछा प्रभु! हम १५ सौ तापस ५००—५०० सौ कि टुकडी करके यहां विजन जंगल में रहते हैं। अनेक प्रकारकी तपस्या करके सूखे फल फूल खाते हैं, तो भी १—२—३पावडीसे ऊपर नहीं जा सकते। और हमारे देखते ही देखते आप तुच्छ सी वस्तु का सहारा लेकर ३२ कोसके ऊंचे इस पहाड के शिखर पर कैसे चढ गये ?। क्षीराश्रव लब्धिसंपन्न गणधर महाराज ने बडे प्रेमसे सकाम और निष्काम तपका स्वरूप समझाकर कहा—जो तप सिर्फ आत्मकल्याणके लिये किया जाता है, और जिसमें ज्ञानयोग की मुख्यता होती है, उस निष्काम अर्थात् इच्छारहित तपके प्रभाव से जीव में अणिमा; महिमा गरिमा, लघिमा; प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व, वशित्व, यह आठ प्रकारकी लब्धियां उत्पन्न होती हैं!

अणिमा महिमा चैव, गरिमा लघिमा तथा।
प्राप्तिः प्राकाम्यमीशत्वं भवन्ति चाष्टसिद्धयः ॥ १ ॥

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इस बात को सुनकर वह सबके सब तपस्वी श्रीगुरु गौतम-स्वामीजी के पास दीक्षित हुए गणधर महाराज ने सिर्फ एक ही पात्र में क्षीर लाकर उन सब को खिलाई। उन १५०० मनुष्यों को गौतम गुरुने उतने पात्रकी खीर से ही तृप्त कर दिया। इस बनाव को देख कर उन्होंने बहुत लाभ उठाया। ऐसे ही कहते हैं राजा विश्वामित्र अपने सैनिकों को साथ लेकर वशिष्ठ ऋषि के आश्रम में गये। ऋषिने राजाको भोजन देना चाहा, राजाने इनकार करते हुए कहा मैं अपने सहचारियोंको भूखा रखकर अकेला भोजन नहीं करूंगा। वशिष्ट बोले हम तुम सबको अपना अतिथि बनाते हैं, राजा ने हंस कर कहा आप इस छोटीसी झोंपडीमें रहकर असंख्य मनुष्य और पशुपक्षियों को क्या खिलायेंगे?, वशिष्ठ ने कहा तुम निश्चित रहो हम सभी अतिथियोंका सत्कार करेंगे। निदान सभीने ऋषिका न्यौता स्वीकार करके स्नान किया। इधर ऋषिजीने अपनी छोटी झोंपडी-मेंसे विविध प्रकार के स्वादिष्ट, रोचक, पाचक भोजन देकर राजाको और उनके साथके असंख्य मनुष्यों को तृप्त किया।

सिंहावलोकन।

पूर्वकालके साधु संन्यासी लोग ऐतिहासिक विज्ञान में, पौराणिक विज्ञान में, पदार्थ विद्यामें, षट् दर्शनोंके स्वरूप परिज्ञानमें, धर्मोपदेश देने में, नये नये ग्रन्थों के निर्माण करने में, योग विद्या, ब्रह्म विद्या, छात्रकला, नक्षत्रचाल, भूतप्रेतों की विद्या, संपत्तिशास्त्र, कृषिवाणिज्य-कौशल्य, नीतिशास्त्र, राशिविद्या, सर्पादिविषापहारि मणिमंत्रौषधि परिज्ञान, देवाकर्षणविद्या, प्राणायाम, राजयोग,—पूर्वपक्ष उत्तरपक्ष द्वारा, वाद जय-पराजय, संसारयात्रा, तीर्थयात्रा, वगैरह सत्कार्योंमें लगे रहते थे, आज उन सर्व बातों को ताला लग रहा है। विद्याओं के बदले व्यापार, ऐतिहासिक शास्त्रों के बदले नवल कथायें, पौराणिकादि परिज्ञान तो नामशेष

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

हो रहा है, पदार्थविद्या तो अंग्रेजों के घरोंमें, दर्शनशास्त्रों को उदेही खा रही है, उनका भाव ही कौन पूछे ? धर्मोपदेश है तो संसारमें अपनी बडाई और महत्ता बढ़ाने के लिये, ग्रन्थ निर्माण के बदले अगर प्राचीन ऋषियों के बनाये पढ़े वांचे ही जावें तो भी बस है। कहां तक कहा-जाय ? प्रायः सारा ही चक्र ऊंधा चल रहा है, जिन के पूर्वजोंने अपने विविध विज्ञान द्वारा राजा महाराजा श्रेष्ठ रईस लोगों को सन्मार्गगामी बनाया था, आज वह अपने पूर्वजों की कीर्तिरूप जायदाद को खा खा कर पापी पेटकी वेठ उतार रहे हैं। इस बात का स्पष्टीकरण नीचे के पद्यों-से भली भांति हो सकेगा।

सुना गया है कि-भगवान् श्रीमन्-" महावीर स्वामी " के समय में ३६३ मत थे, परंतु वर्तमानकाल के स्वतंत्र वादके समय में उन मतोंकी संख्या भी ३६३ से बढ कर आज कल ३००० तक पहुंच गई है।

संसार में-साधु संन्यासी-उदासी निर्मले-वैरागी-ऋषी-मुनि-ब्रह्मचारी-तापस तपस्वी-नागे अवधूत - संत - महंत - यति - भिक्षु इत्यादि नाम धारक मनुष्यों की संख्या जगत् में ५६ लाख जितनी सुनी जाती है।

[विशेष के लिये देखो देशदर्शन,

वे भूरि संख्यक साधु, जिनके पंथ भेद अनन्त हैं।
अवधूत यति नागा उदासी, संत और महन्त हैं॥
हा ! वे गृहस्थोंसे अधिक हैं, आज रागी दीखते।
अत्यल्प ही सच्चे विरागी, और त्यागी दीखते॥ १॥
जो कामिनी-काञ्चन-न छूटा, फिर विराग रहा कहां ?।
पर चिन्ह तो वैराग्य का, अब है जटाओंमें यहां॥
भूखो मरे कि जटा रखाकर, साधु कहलाने लगे।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

चिमटा लिया भस्मी रमाई, मांगने खाने लगे ॥ २ ॥
संख्या अनुद्योगी जनोंकी, हीनतासे बढ़ रही ।
शुचि साधुता पर भी कुयशकी, कालिमा है चढ़ रही ॥
भस्म लेपन से कहीं, मनकी मलिनता छूटती ।
हा ! साधुमर्यादा हमारी, अब दिनोंदिन टूटती ॥ ३ ॥
यदि ये हमारे साधु ही, कर्तव्य अपना पालते ।
तो देशका बेड़ा कभी का, पार यह कर डालते ॥
पर हाय ! इन में ज्ञान तो, सब रामका ही नाम है ।
दमकी चिलममें लौ उठाना, मुख्य इनका काम है ॥ ४ ॥

(मैथिलीशरण गुप्त)

एक महापुरुष का कथन है कि—

दुन्नि विसय पसत्ता, दुन्निविहु धणधन्न संगहसमेया ।
सीसगुरुसमदोसा, तारिज्जइ भणसु को केण ? ॥ १ ॥

(भावार्थ) संसारी जीव—जगत्में—साधुओं के निमित्तसे, उनके भक्षनसें प्रतिवर्ष (६०) क्रोड रुपया व्यय होता है ।

[देखो " संसार नामक मासिक पत्र "]

जो साधुसंतकी सेवा करते हैं उन के बतलाये हुंये रास्ते पर चलते हैं, उनके कहनेसे लाखों करोंडों रुपये खर्च करते हैं। वह किस वास्ते ? साधुओं के साथ उनका क्या नाता है ? क्या सम्बन्ध है ? कहना होगा कि धर्म । सिवाय धर्म के जहां और किसी भी किस्म का संबन्ध होगा वहां दोनों कौ ही हानि ही पहुंचेगी । अतएव सिद्ध हुआ कि संसार में साधु महात्माओं का संचय परिचय गृहस्थ को अनादिकाल की दुर्वासनाओं से बचानेवाला है, हटाने वाला है । परन्तु साधु अपने साधुधर्म में कायम होना चाहिये । अगर ऐसा न होगा तो होगा क्या ? शिष्य अर्थात् गृहस्थ के एक पत्नी, अर्थात् गृहस्थ

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

तो अपनी एक ही स्त्री पर से तुष्ट है और जिसको गुरु माना है, उससे कृष्णलीला मनाई जाती है। गृहस्थ के पास बारह महीने के गुजारे के वास्ते दश बीस मन अनाज होगा और गुरुजी के वखारें भरी होंगी। और मन में उनके यह ही भावना वर्त्तती होगी कि एक रुपये का एक सेर अनाज होजाय तो हम करोड़पति होजायें।

ऐसी हालत में कहना चाहिये कि तरनेवाला तो काष्ठ है मगर नाव लोहेकी है। वह उसे किसी प्रकार तार नहीं सकती।

एक घडी आधी घडी, आधीमें पिण आध।
"तुलसी" संगति साधुकी, कटे कोटि अपराध ॥ १ ॥

शीतरितु—जोरैं अंग सबही सकोरैं तहां
तनको न मोरैं नदी धोरैं धीरजे खरे।
जेठकी झकोरैं जहां अंडा चील छोरैं पशु,
पंछी छांह लोरै गिरिकोरै तप वे धरे॥
घोर घन घोरैं घटा चहुं ओर डोरै ज्यौं ज्यौं,
चलत हिलोरैं त्यौं त्यौं फोरैं बलये अरे।
देह नेह तोरैं परमारथ सौं प्रीति जोरैं,
ऐसे गुरुओरैं हम हाथ अंजुली करे॥ २॥

यह जो महात्मा तुलसीदास का और कवि-मुदर दासजी का महिमा वचन है वह कैसे साधुओंके लिये है? उनके लक्षण यह हैं—

जोयुं विवेक विचारथी संसारमां कांई नथी,
स्त्रीपुत्रने परिवार वली रामारमा कांई नथी।
हो नगरके वन विजन जेहने उभय एक समान छे
ते मोहजेता साधुना मनमां तमा कांई नथी॥ १॥
"सुखे दुःखे भवे मोक्षे साधवः समचेतसः"।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

॥ पूर्वपर्यालोचन ॥

प्रथम वर्णन किया जा चुका है कि अपने विषद विद्याबलसे, विशुद्ध तपोबलसे, अप्रमत्त क्रियाकाण्डसे, अप्रतिबद्ध विहारसे सत्य उपदेशोंसे, विविध तितिक्षाओंके परिशीलन से, महात्मा पुरुषोंने प्रथम अपने उच्च निर्मल, निष्काम, निर्विकार, एवम् निर्दोष जीवनसे संसारको अपना अनुरागी किया है और तत्पश्चात् ही उनको धर्मोपदेश द्वारा मार्गानुगामी किया है। ऐसे ही संसारके अग्रगण्य गृहस्थ महानुभावोंको भी आवश्यक है कि वह दूसरे को आदर्श बनाने के प्रथम अपने जीवनको असाधारण बनाने का दृढ प्रयत्न करें, बस संपूर्ण संसार उसका दास है।

यह बात भी अवश्य स्मरण रखनी चाहिये कि केवल शिक्षा ही काफी नहीं है, चतुर आदमी दुराचारी भी हो सकता है, धर्महीन मनुष्य जितना चतुर होगा उतना ही अत्याचारी होगा, अत एव शिक्षा की नीव धर्म और सच्चरित्रता पर स्थित होनी चाहिये, कोरी शिक्षा किसी भी कामकी नहीं, उससे बुरी वासनायें दूर नहीं हो सकतीं। बुद्धि की वृद्धि का (साधारणतया) सच्चरित्रता पर बहुत थोडा प्रभाव पडता है। बहुतेरे लिखे पढे मनुष्य अदूरदर्शी अपव्ययी और आचारभ्रष्ट देखनेमें आते हैं, अत एव यह अत्यन्त आवश्यक है कि शिक्षा धार्मिक और नैतिक सिद्धांतों पर स्थित हो। [इसका अधिक विस्तार मितव्ययतासे देखो]

अब देशसेवा के हिमायतियों को गौर कर के सोचना चाहिये कि ऐसा अवसर फिर आना मुश्किल है "**स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्**"।

बाकी तो विदेशी शिक्षा पाकर भी विदेश भ्रमण करके भी अगर देशसेवा नहीं की तो भाई ! तुझे क्या कहें ? कविरत्न का कहना है—

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अमरीकनों के पात्र जूटे, साफ कर पंडित हुए ।
सच्चे स्वदेशी मानसे, फिर भी नहीं मंडित हुए ।।
दृष्टान्त बनते हैं अधिक, वह इस कहावत के लिये ।
बारह वरस दिल्ली रहे, पर भाडही झोका किये ।।

जर्मनी में सेनाविभागवाले लोग और वाणिक लोग कबूतरों तथा अन्य पालित चिड़ियों को शिक्षित करने आर कई तरह से अपने काम के योग्य बनाने की चेष्टा कर रहे हैं । वे इनके गले में चिट्ठी तथा पत्रों को रूमाल से बान्धकर एक जगह से दूसरी जगह लेजाने की शिक्षा देते हैं । वाणिक लोग अपनी शाखाओं में जो किसी नदी के पार हैं नौकर आदिकी प्रतीक्षा न कर अति आवश्यक पत्रों को इन्ही पक्षियों के द्वारा भेजा करते हैं । उसी तरहसे सेना विभाग भी युद्धके समय शिक्षित कबूतरों से संवाद भेजने का काम लेता है । समाचार पत्रों में पढें लिखे लोगों को यह संवाद मिला होगा कि हाल में जो प्रदर्शनी जर्मनीमें हुई थी उसमें १०, ००० शिक्षित कबूतर लाये गये थे जो निश्चित स्थानो पर सम्वाद पहुंचाते थे । इन कारणों से जर्मनीमें एक कबूतर का मारना वर्ष के मनुष्य की अपेक्षा कहीं अधिक मूल्य है ।

जैन धर्ममें गृहस्थाश्रमके पांच नियम ।

१—निष्कारण निरपराधी जीव को जानकर न मारना । और जिस ने अपना अपराध किया है जहां तक हो सके उसपर भी क्षमा करनी ।

२—अव्वल तो सर्वथा झूठ न बोलना, अगर निर्वाह न होसके तो कन्या, गौ, भूमि, इन तीन चीजों के विषय में तो झूठ न बोलना और अमानत गुम्म न करना, ४ झूठी गवाही न देना ।

३—मालिक की इजाजत के सिवाय किसी की चीज पर अपनी मालिकी न करना अर्थात् चोरी न करना ।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

४ स्वस्त्री संतोष कर—परस्त्री गमन का त्याग करना ।

५—धनसम्पति का सन्तोष—इच्छानिरोध तृष्णा का घटाना ।

जैनधर्म की प्रौढ और प्रकृष्ट शिक्षा यह ही है कि सर्व जीवात्माओं को चाहे वह छोटे हों चाहे बडे हों, अमीर हों या गरीब हों, सबका भला करो, सब को अपने आत्मा के समान मानो । विना प्रयोजन किसीको मत सताओ " आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् " जिसको तुम सताओगे वह कभी न कभी तुम्हारा भी नुकसान करेगा, उस वक्त तुमको बहुत बडा क्लेश होगा ।

" बदन सोचे जेम गर दू गर कोई मेरी सुने ।
है यह गुम्मज की सदा जैसी कहे वैसी सुने ।। "

(१) जैनधर्म को स्वीकार कर के कुमारपाल जैसे राजाओं ने देशों में यूका जैसे क्षुद्र प्राणियों की भी रक्षा की है, मगर जब देश रक्षण का काम पडा तब तलवार लेकर मैदान में भी उतरे हैं । कवि दलपत-रामने लिखा है कि " जैनो की दयाने संसार को कमजोर कर दिया है " मगर यह सरयाम भूल है, जैन के इतिहास पुस्तकोंसे बराबर सिद्ध होता है कि महावीर के परम भक्त द्वादश व्रत धारक श्रावक राजा चेटक (चेडा) ने १२ वर्षतक कूणिक राजा से संग्राम किया है । उदायी राजा ने मालवेश उज्जयनी पति चंडप्रद्योतन को जीता है । संप्रति राजाने त्रिखण्डभूमिका विजय किया है । कुमारपालने सपादलक्षके राजाको , (शाकंभरी) सांभरके नरपतिको, चन्द्रावती के राजा सामन्तसिंह को जीता है । इतना ही नहीं वल्कि उनके जैनमंत्रि भी लडाइयों में विजय पाते रहे हैं, कुमारपालका मुख्य प्रधान उदयन लडाई में ही मारा गया था । कुमारपाल के पूर्व गुजरात के राजा देव हो चुके हैं, उन-का मंत्री विमलशाह बडा बहादुर था, तीर और तलवार को लेकर शत्रु-ओं को उत्साहसे पराजित करता था । सिन्ध की चढाई में विमल की

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

बहादुरी से ही सिन्धपति पकडा गया था। प्रसिद्ध मंत्री वस्तुपाल तेजपाल ने कई बार गुजरात की तरफ आते हुए यवनों को परास्त कर के पीछे लौटाया था। मेवाड केशरी महाराणा प्रताप जब सब तरह से हारकर मुगल बादशाह से सन्धि करने को तैयार हुये थे तब उन को सहायता देकर फिरसे उत्साहित करनेवाला भामाशाह पोरवाड जैनधर्मका ही उपासक था। प्रसिद्ध है कि १२ वर्षतक हाथी घोडे सहित २५ हजार फौजी मनुष्यों का पालन हो सके इतनी सहायता देकर भामाशाह सेठने भारत के अस्त होते सूर्यको थाम लिया था। इतना ही नहीं बल्कि अपने राज्यको किसी कारण सर छोडकर चित्तौडमें आये हुए बहादुर शाहको आपत्ति के समय किसी भी शर्तके विना एक लाख रुपया देकर उसे सुखी करनेवाला भाग्यवान् कर्मशाह भी जैन ही था।

तीर्थंकर देवोंका यह ही उपदेश है कि सभीका लाभ चाहो। तुम्हारा खुदका भी भला होगा। मनसे बचनसे और कर्मसे जीवमात्र के साथ मैत्री रक्खो। सदाकाल सत्यभाषी रहो। जिह्वा यह दक्षिणावर्त्त शंख है, इसमें कीचड मत भरो, अगर हो सके तो कामधेनुका दूध भरो, यह तुमको वांछितफल का देनेवाला होगा ॥ १ ॥

जैनधर्मका अहिंसातत्त्व।

जैनधर्म के सब ही 'आचार' और 'विचार' एक मात्र 'अहिंसा' के तत्त्व पर रचे गये हैं। यों तो भारत के ब्राह्मण, बौद्ध आदि सभी प्रसिद्ध धर्मों ने अहिंसा को 'परम धर्म' माना है और सभी ऋषि, मुनि साधु संत इत्यादि उपदेष्टाओं ने अहिंसा का महत्त्व और उपादेयत्व बतलाया है; तथापि इस तत्त्व को जितना विस्तृत, जितना सूक्ष्म, जितना गहन और जितना आचरणीय जैनधर्म ने बनाया है, उतना अन्य किसी ने नहीं। जैनधर्म के प्रवर्तकों ने अहिंसातत्त्व को

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

चरम सीमा तक पहुंचा दिया है । उन्होंने केवल अहिंसा का कथन मात्र ही नहीं किया है परन्तु उसका आचरण भी वैसा ही कर दिखाया है । और और धर्मों का अहिंसा तत्त्व केवल कायिक बन कर रह गया है परन्तु जैनधर्म का अहिंसा तत्त्व उससे बहुत कुछ आगे बढकर वाचिक और मानसिक से भी पर—आत्मिक रूप बन गया है । औरों की अहिंसा की मर्यादा मनुष्य और उससे जादह हुआ तो पशु—पक्षी के जगत् तक जाकर समाप्त हो जाती है; परन्तु जैनी अहिंसा की कोई मर्यादा ही नहीं है । उसकी मर्यादा में सारी सचराचर जीव जाति समा जाति है और तो भी वह वैसी ही अमित रहती है । वह विश्व की तरह अमर्यादा—अनंत है और आकाश की तरह सर्व पदार्थ व्यापी है ।

परन्तु जैनधर्म के इस महत् तत्त्व के यथार्थ रहस्य को समझने के लिये बहुत ही थोडे मनुष्यों ने प्रयत्न किया है । जैन की इस अहिंसा के बारे में लोगों में बडी अज्ञानता और बेसमझी फैली हुई है । कोई इसे अव्यवहार्य बतलाता है तो कोई इसे अनाचरणीय बतलाता है । कोई इसे आत्मघातिनी कहता है और कोई राष्ट्रनाशिनी । कोई कहता है जैनधर्म की अहिंसा ने देश को पराधीन बना दिया है और कोई कहता है; इसने प्रजा को निर्वीर्य बना दिया है । इस प्रकार जैनी अहिंसा के बारे में अनेक मनुष्यों के अनेक कुविचार सुनाई देते हैं । कुछ वर्ष पहले देशभक्त पंजाबकेशरी लालाजी तक ने भी एक ऐसा ही भ्रमात्मक विचार प्रकाशित कराया था, जिसमें महात्मा गांधीजी द्वारा प्रचारित अहिंसा के तत्त्व का विरोध किया गया था, और फिर जिसका समाधायक उत्तर स्वयं महात्माजी ने दिया था । लालाजी जैसे गहरे विद्वान् और प्रसिद्ध देशनायक हो कर तथा जैन साधुओं का पूरा परिचय रखकर भी जब इस अहिंसा के विषय में वैसे भ्रान्तविचार रख

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सकते हैं तो फिर अन्य साधारण मनुष्यों की तो बात ही क्या की जाय । हाल ही में—कुछ दिन पहले—जी. के. नरीमान नामक एक पारसी विद्वान ने महात्मा गांधीजी को सम्बोधन कर एक लेख लिखा है, जिसमें उन्होंने जैनों की अहिंसा के विषय में ऐसे ही भ्रमपूर्ण उद्गार प्रकट किये हैं । मि. नरीमान एक अच्छे ओरिएन्टल स्कॉलर हैं, और उनको जैन साहित्य तथा जैन विद्वानों का कुछ परिचय भी मालूम देता है । जैनधर्म से परिचित और पुरातन इतिहास से अभिज्ञ विद्वानों के मुंह से जब ऐसे अविचारित उद्गार सुनाई देते हैं, तब साधारण मनुष्यों के मन में उक्त प्रकार की भ्रांति का ठस जाना साहजिक है । इस लिये हम यहां पर संक्षेप में आज जैनधर्म की अहिंसा के बारे में जो उक्त प्रकार की भ्रांतियां जनसमाज में फैली हुई हैं, उनका मिथ्यापन दिखाते हैं ।

जैनी अहिंसा के विषय में पहला आक्षेप यह किया जाता है कि—जैनधर्म के प्रवर्तकों ने अहिंसा कि मर्यादा को इतनी लम्बी और इतनी विस्तृत बना दी है कि, जिससे लगभग वह अव्यवहार्य की कोटि में जा पहुंची है । जो कोई इस अहिंसा का पूर्ण रूप से पालन करना चाहे तो उसे अपनी समग्र जीवनक्रियायें बंध करनी होंगी और निश्चेष्ट हो कर देहत्याग करना होगा । जीवनव्यवहार को चालू रखना और इस अहिंसा का पालन भी करना, ये दोनों बातें परस्पर विरुद्ध हैं । अतः इस अहिंसा के पालन का मतलब आत्मघात करना है; इत्यादि ।

यद्यपि इसमें कोई शक नहीं है कि—जैन अहिंसा की मर्यादा बहुत ही विस्तृत है और इस लिये उसका पालन करना सबके लिये बहुत ही कठिन है । तथापि यह सर्वथा अव्यवहार्य वा आत्मघातक

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

है, इस कथन में किंचित् भी तथ्य नहीं है । न यह अव्यवहार्य ही है और न आत्मघातक ही । यह बात तो सब कोई स्वीकारते और मानते हैं कि, इस अहिंसा तत्त्व के प्रवर्तकों ने इसका आचरण अपने जीवन में पूर्ण रूप से किया था । वे इसका पूर्णतया पालन करते हुए भी वर्षों तक जीवित रहे और जगत् को अपना परम तत्त्व समझाते रहे । उनके उपदेशानुसार अन्य असंख्य मनुष्यों ने आज तक इस तत्त्वका यथार्थ पालन किया है परंतु किसीको आत्मघात करनेका काम नहीं पडा । इस लिये यह बात तो सर्वानुभवसिद्ध जैसी है कि जैन अहिंसा अव्यवहार्य भी नहीं है और इसका पालन करने के लिये आत्मघात की भी आवश्यकता नहीं है । यह विचार तो वैसा ही है जैसा कि महात्मा गांधीजीनें देशके उद्धार निमित्त जब असहयोग की योजना उद्घोषित की, तब अनेक विद्वान और नेता कहलाने वाले मनुष्योंने उनकी इस योजनाको अव्यवहार्य और राष्ट्रनाशक बतानेकी बडी लंबी लंबी बातें की थीं और जनताको उसे सावधान रहने की हिनायत दी थी । परंतु अनुभव और आचरण से यह अब निस्संदेह सिद्ध हो गया कि न असहयोग की योजना अव्यवहार्य ही है और न राष्ट्रनाशक ही । हां जो अपने स्वार्थका भोग देनेके लिये तैयार नहीं और अपने सुखोंका त्याग करने को तत्पर नहीं उनके लिये ये दोनों बातें अवश्य अव्यवहार्य हैं; इसमें कोई संदेह नहीं है । आत्मा या राष्ट्रका उद्धार विना स्वार्थत्याग और सुख परिहार के कभी नहीं होता । राष्ट्र को स्वतंत्र और सुखी बनानेके लिये जैसे सर्वस्व अर्पण की आवश्यकता है वैसे ही आत्मा को आधिव्याधि उपाधिसे स्वतंत्र और दुःख द्वंद्वसे निर्मुक्त बनानेके लिये भी सर्व मायिक सुखों के बलिदान कर देनेकी आवश्यकता है । इस लिये जो " मुचुक्षु " (बंधनोंसे मुक्त होनेकी इच्छा रखनेवाला) है—राष्ट्र और आत्माके उद्धारका इच्छक है उसे तो यह जैन अहिंसा कभी भी अव्यवहार्य या

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आत्मनाशक नहीं मालूम देगी परन्तु स्वार्थलोलुप और सुखैषी जीवोंकी बात अलग है।

जैन धर्मकी अहिंसा पर दूसरा परंतु बडा आक्षेप यह किया जाता है कि—इस अहिंसा के प्रचारने भारत को पराधीन और प्रजाको निर्वीर्य बना दिया है। इस आक्षेपके करने वालों का मत है कि अहिंसा के प्रचारसे लोकोमें शौर्य नहीं रहा। क्योंकि अहिंसाजन्य पापसे डर कर लोकोंने मांस भक्षण छोड दिया; और बिना मांस भक्षणके शरीरमें बल और मनमें शौर्य नहीं पैदा होता। इस लिये प्रजाके दिलमेंसे युद्धकी भावना नष्ट हो गई और उसके कारण विदेशी और विधर्मी लोकोंने भारत पर आक्रमण कर उसे अपने अधीन बना लिया। इस प्रकार अहिंसाके प्रचारसे देश पराधीन और प्रजा पराक्रमशून्य हो गई।

अहिंसा के बारे में की गई यह कल्पना नितान्त युक्तिशुन्य और सत्यसे परांमुख है। इस कल्पनाके मूलमें बडी भारी अज्ञानता और अनुभवशुन्यता रही हुई है। जो यह विचार प्रदर्शित करते हैं उनको न तो भारतके प्राचीन इतिहासका पता होना चाहिए और न जगत के मानव समाजकी परिस्थितिका ज्ञान होना चाहिए। भारतकी पराधीनताका कारण अहिंसा नहीं है परंतु भारतकी अकर्मण्यता अज्ञानता और असहिष्णुता है और इन सबका मूल हिंसा है! भारतका पुरातन इतिहास प्रकट रूपसे बतला रहा है कि जब तक भारतमें अहिंसाप्रधान धर्मोंका अभ्युदय रहा तब तक प्रजामें शांति, शौर्य, सुख और संतोष यथेष्ट व्याप्त थे। अहिंसा धर्मके महान उपासक और प्रचारक नृपति मौर्य सम्राट चंद्रगुप्त और अशोक थे; क्या इनके समयमें भारत पराधीन हुआ था? अहिंसा धर्मके कट्टर अनुयायी दक्षिणके कदंब, पल्लव और चौलक्य वंशोके प्रसिद्ध प्रसिद्ध महाराजा थे; क्या उनके राजत्वकालमें किसी परचक्रने आकर भारतको ततावा था? अहिंसा तत्वका अनुयायी चक्र-

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

वर्ती सम्राट श्रीहर्ष था, क्या उसके समयमें भारतको किसीने पद दलित किया था ? अहिंसा मतका पालन करने वाला दक्षिणका राष्ट्रकूट वंशीय नृपति अमोघवर्ष और गुजरातका चालुक्य वंशीय प्रजापति कुमारपाल था; क्या इनकी अहिंसोपासनासे देशकी स्वतंत्रता नष्ट हुई थी ? इतिहास तो साक्षी दे रहा है कि भारत इन राजाओंके राजत्व कालमें अभ्युदयके शिखर पर पहुंचा था। जब तक भारतमें बौद्ध और जैन धर्मका जोर था और जब तक ये धर्म राष्ट्रीय धर्म कहलाते थे तब तक भारतमें स्वतंत्रता, शांति, संपत्ति इत्यादि पूर्ण रूपसे विराजित थी। अहिंसाके इन परम उपासक नृपतियोंने अहिंसा धर्मका पालन करते हुए भी अनेक युद्ध किये. अनेक शत्रुओंको पराजित किये और अनेक दुष्टजनोंको दण्डित किये। इनकी अहिंसोपासनाने न देश को पराधीन बनाया और न प्रजाको निर्वीर्य बनाया। जिनको गुजरात और राजपूतानेके इतिहासका थोडा बहुत भी वास्तविक ज्ञान है वे जान सकते हैं कि इन देशोंको स्वतंत्र, समुन्नत और सुरक्षित रखनेके लिये जैनोंने कैसे कैसे पराक्रम किये थे। जिस समय गुजरातका राज्यकार्यभार जैनोंके अधीन था—महामात्य, मंत्री, सेनापति, कोषाध्यक्ष आदि बडे बडे अधिकारपद जैनोंके अधीन थे—उस समय गुजरातका ऐश्वर्य उन्नतिकी चरम सीमा पर चढा हुआ था। गुजरातके सिंहासनका तेज दिग्दिगंत व्यापी था। गुजरातके इतिहासमें दंडनायक विमलशाहा, मंत्री मुंजाल, मंत्री शांतु, महामात्य उदयन और बाहड; वस्तुपाल और तेजपाल; आभू और जगडू, इत्यादि जैन राजद्वारी पुरुषोंको जो स्थान है वह औरोंको नहीं है। केवल गुजरात ही के इतिहासमें नहीं परंतु समूचे भारत के इतिहासमें भी इन अहिंसाधर्म के परमोपासकों के पराक्रमकी तुलना रखनेवाले पुरुष बहुत कम मिलेंगे। जिस धर्मके परम अनुयायी स्वयं ऐसे शूरवीर और पराक्रमशाली थे और जिन्होंने अपने पुरुषार्थसे देश और राज्यको खूब

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

समृद्ध और सत्वशील बनाया था; उस धर्मके प्रचारसे देशकी या प्रजाकी अधोगति कैसे हो सकती है ? देशकी पराधीनता या प्रजाकी निर्वीर्यतामें कारणभूत ' अहिंसा ' कभी नहीं हो सकती ! जिन देशोंमें ' हिंसा ' का खूब प्रचार है, जो अहिंसाका नाम तक नहीं जानते हैं, एक मात्र मांस ही जिनका शास्वत भक्षण है और पशुसे भी जो अधिक क्रूर होते हैं क्या वे सदैव स्वतंत्र बने रहते हैं । रोमन साम्राज्य ने किस दिन अहिंसाका नाम सुना था ? और मांस भक्षण छोडा था ? फिर क्यों उसका नाम संसारसे उठ गया । तुर्क प्रजामेंसे कब हिंसा-भाव नष्ट हुआ और क्रूरताका लोप हुआ ? फिर क्यों उसके साम्राज्यकी आज यह दीन दशा हो रही है ? आयर्लेण्डमें कब अहिंसाकी उद्घोषणा की गई थी ? फिर क्यों वह आज शताब्दियोंसे स्वाधीन होनेके लिये तडफडा रहा है ? दूसरे देशोंकी बात जाने दीजिए—खुद भारत ही के उदाहरण लीजिए । मुगल साम्राज्यके चालकोंने कब अहिंसाकी उपासना की थी जिससे उनका प्रभुत्व नामशेष हो गया और उसके विरुद्ध पेशवाओंने कब मांस भक्षण किया था जिससे उनमें एकदम वीरत्वका वेग उमड आया । इससे स्पष्ट है कि देशकी राजनैतिक उन्नति—अवनतिमें हिंसा—अहिंसा कोई कारण नहीं है । इसमें तो कारण केवल राजकर्ताओंकी कार्यदक्षता और कर्तव्यपरायणता ही मुख्य है ।

हां, प्रजाकी नैतिक उन्नति—अवनतिमें तत्वतः अहिंसा—हिंसा अवश्य कारणभूत होती है । अहिंसाकी भावनासे प्रजामें सात्त्विक वृत्ति खिलती है और जहां सात्त्विक वृत्तिका विकास है वहां सत्त्वका निवास है । सत्त्वशाली प्रजा ही का जीवन श्रेष्ठ और उच्च समझा जाता है इससे विपरीत सत्त्वहीन जीवन कनिष्ट और नीच गिना जाता है । जिस प्रजामें सत्त्व नहीं वहा, समृति, स्वतंत्रता आदि कुछ नहीं ! इस लिये प्रजाकी नैतिक

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

उन्नतिमें अहिंसा एक प्रधान कारण है। नैतिक उन्नतिके मुकाबले में भौतिक प्रगतिको कोई स्थान नहीं है और इसी विचारसे भारत वर्षके पुरातन ऋषि–मुनियोंने अपनी प्रजाको शुद्ध नीतिमान बनने ही का सर्वाधिक सदुपदेश दिया है। युरोपकी प्रजाने नैतिक उन्नतिको गौणकर भौतिक प्रगतिकी ओर जो आंखमींच कर दौडना शुरू किया था उसका कटु परिणाम आज सारा संसार भोग रहा है। संसारमें यदि सच्ची शान्ति और वास्तविक स्वतंत्रताके स्थापित होनेकी आवश्यकता है तो मनुष्योंको शुद्ध नीतिमान् बनना चाहिए।

शुद्ध नीतिमान् वही बन सकता है जो अहिंसाके तत्त्वको ठीक ठीक समझ कर उसका पालन करता है। अहिंसा, शांति, शक्ति, शुचिता, दया, प्रेम, क्षमा, सहिष्णुता, निर्लोभता इत्यादि सर्व प्रकारके सद्गुणों की जननी है। अहिंसाके आचरणसे मनुष्यके हृदयमें पवित्र भावोंका संचार होता है, वैर विरोधकी भावना नष्ट होती है और सबके साथ बंधुत्वका नाता जुडता है। जिस प्रजामें ये भाव खिलते हैं वहां ऐक्य-का साम्राज्य होता है और एकता ही आज हमारे देशके अभ्युदय और स्वातंत्र्यका मूलबीज है। इस लिये अहिंसा यह देशकी अवनतिका कारण नहीं है परंतु उन्नतिका एकमात्र और अमोघ साधन है।

'हिंसा' शब्द हननार्थक 'हिंसि' धातु पर से बना है इस लिए 'हिंसा' का अर्थ होता है, किसी प्राणी को हनना या मारना। भारतीय ऋषि-मुनियों ने हिंसा की स्पष्ट व्याख्या इस प्रकार की है—'प्राण-वियोग प्रयोजन व्यापारः' अथवा 'प्राणि दुःख साधन व्यापारो हिंसा-अर्थात् प्राणी के प्राण का वियोग करने के लिये अथवा प्राणी को दुःख देने के लिये जो प्रयत्न किया उसका नाम हिंसा है। इसके विपरीत—किसी भी जीव को दुःख या कष्ट न पहुंचाना अहिंसा है। 'पातंजल' योगसूत्र के भाष्यकार महर्षि व्यासने 'अहिंसा' का लक्षण यह किया

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

है—'सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनाभिद्रोहः—अहिंसा' अर्थात् सब तरह से, सर्व समय में, सभी प्राणियों के साथ अद्रोह भाव से वर्तना—प्रेम-भाव रखना उसका नाम अहिंसा है। इसी अर्थ को विशेष स्पष्ट करने के लिये ईश्वरगीता में लिखा है कि—

कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा
अक्लेशजननं प्रोक्ता अहिंसा परमर्षिभिः।

अर्थात्—मन, वचन और कर्म से सर्वदा किसी भी प्राणी को क्लेश नहीं पहुंचाने का नाम महर्षियों ने 'अहिंसा' कहा है। इस प्रकार की अहिंसा के पालन की क्या आवश्यकता है इसके लिये आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है कि—

आत्मवत् सर्वभूतेषु सुखदुःखे प्रियाप्रिये।
चिन्तयन्नात्मनोऽनिष्टां हिंसामन्यस्य नाचरेत्॥

अर्थात्—जैसे अपनी आत्मा को सुख प्रिय लगता है और दुःख अप्रिय लगता है, वैसे ही सब प्राणियों को लगता है। इस लिये अपनी आत्मा के समान अन्य आत्माओं के प्रति भी अनिष्ट ऐसी हिंसा का आचरण कभी नहीं करना चाहिये। यही बात स्वयं श्रमणभगवान् श्री महावीर ने भी इस प्रकार कही है—

"सव्वे पाणा पिया, सुहसाया, दुहपडिकूला, अप्पिय वहा, पिय-जीविणो, जीविउकामा। (तम्हा) णातिवाएज्ज किंचणं।"

अर्थात्—सर्व प्राणियों को आयुष्य प्रिय है, सब सुख के अभिलाषी हैं, दुःख सबको प्रतिकूल है, वध सबको अप्रिय है, जीवित सभी को प्रिय लगता है-सभी जीने की इच्छा रखते हैं। इसलिये किसीको मारना या कष्ट न देना चाहिए। अहिंसा के आचरण की आवश्यकता के लिये इससे बढकर और कोई दलील नहीं है—और कोई दलील हो ही नहीं सकती।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

परन्तु यहां पर एक प्रश्न यह उपस्थित होता है कि, इस प्रकार की अहिंसा का पालन सभी मनुष्य किस तरह कर सकते हैं। क्योंकि जैसा कि शास्त्रों में कहा है—

जले जीवाः स्थले जीवा जीवाः पर्वतमस्तके।
ज्वालमालाकुले जीवाः सर्वं जीवमयं जगत्॥

अर्थात् जल में, स्थल में, पर्वत में, अग्नि में इत्यादि सब जगह जीव भरे हुए हैं—सारा जगत जीवमय है। इसलिये मनुष्य के प्रत्येक व्यवहारमें—खान में, पान में, चलने में, बैठने में, व्यापार में, विहार में इत्यादि सब प्रकार के व्यवहार में—जीवहिंसा होती है। बिना हिंसा के कोई भी प्रवृत्ति नहीं की जासकती। अतः इस प्रकार की संपूर्ण अहिंसा के पालन करने का अर्थ तो यह हो सकता है, मनुष्य अपनी सभी जीवन क्रियाओं को बन्ध कर, योगी के समान समाधिस्थ हो इस नर-देह का बलात् नाश कर दे। ऐसा करने के सिवाय,—अहिंसा का भी पालन करना और जीवन को भी बचाये रखना, यह तो आकाश—कुसुम की गन्ध की अभिलाष के समान ही निरर्थक और निर्विचार है। अतः पूर्ण अहिंसा यह केवल विचार का ही विषय हो सकता है आचार का नहीं।

यह प्रश्न यथार्थ है। इस प्रश्न का समाधान अहिंसा के भेद और अधिकारी का निरूपण करने से होगा। इसलिये प्रथम अहिंसा के भेद बतलाये जाते हैं। जैनशास्त्रकारों ने अहिंसा के अनेक प्रकार बतलाये हैं; जैसे स्थूल अहिंसा; और सूक्ष्म अहिंसा; द्रव्य अहिंसा और भाव अहिंसा; स्वरूप अहिंसा और परमार्थ अहिंसा; देश अहिंसा और सर्व अहिंसा; इत्यादि। किसी भी चलते फिरते प्राणी या जीव को जीजान से न मारने की प्रतिज्ञा का नाम स्थूल अहिंसा है, और सर्व प्रकार के प्राणियों को सब तरह से क्लेश न पहुंचाने की आचरण का नाम

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सूक्ष्म अहिंसा है। किसी भी जीव को अपने शरीर से दुःख न देने का नाम द्रव्य अहिंसा है और सब आत्माओं के कल्याण की कामना का नाम भाव अहिंसा है। यही बात स्वरूप और परमार्थ अहिंसा के बारे में भी कही जासकती है। किसी अंश में अहिंसा का पालन करना देश अहिंसा कहलाती है और सर्व प्रकार—संपूर्णतया अहिंसा का पालन करना सर्व अहिंसा कहलाती है।

यद्यपि आत्मा को अमरत्व की प्राप्ति के लिये और संसार के सर्व बन्धनों से मुक्त होने के लिये अहिंसा का संपूर्णरूप से आचरण करना परमावश्यक है। बिना वैसा किये मुक्ति कदापि नहीं मिल सकती। तथापि संसार निवासी सभी मनुष्यों में एकदम ऐसी पूर्ण अहिंसा के पालन करने की शक्ति और योग्यता नहीं आसकती, इसलिये न्यूनाधिक शक्ति और योग्यता वाले मनुष्यों के लिये उपर्युक्त रीति से तत्त्वज्ञों ने अहिंसा के भेद कर क्रमशः इस विषय में मनुष्य को उन्नता होने की सुविधा बतला दी है। अहिंसा के इन भेदों के कारण उसके अधिकारियों में भेद कर दिया गया है। जो मनुष्य अहिंसा का संपूर्णतया पालन नहीं कर सकते, वे गृहस्थ—श्रावक—उपासक—अणुव्रती देशव्रती इत्यादि कहलाते हैं। जब तक जिस मनुष्य में संसार के सब प्रकार के मोह और प्रलोभन को सर्वथा छोड देने की जितनी आत्मशक्ति प्रकट नहीं होती तब तक वह संसार में रहा हुआ और अपना गृहव्यवहार चलाता हुआ धीरे धीरे अहिंसाव्रत के पालन में उन्नति करता चला जाय। जहां तक हो सके वह अपने स्वार्थों को कम करता जाय और निजी स्वार्थ के लिये प्राणियों के प्रति मारन-ताडन—छेदन—आक्रोशन आदि क्लेशजनक व्यवहारों का परिहार करता जाय। ऐसे गृहस्थ के लिये कुटुंब देश या धर्म के रक्षण के निमित्त यदि स्थूल हिंसा करनी पडे तो उसे अपने व्रत में कोई हानि नहीं पहुं-

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

चती। क्योंकि जब तक वह गृहस्थी लेकर बैठा है तब तक समाज, देश और धर्म का यथाशक्ति रक्षण करना यह उसका परम कर्तव्य है। यदि किसी भ्रांतिवश वह अपने कर्तव्य से भ्रष्ट होता है तो उसका नैतिक अधःपात होता है, और नैतिक अधःपात यह एक सूक्ष्म हिंसा है। क्योंकि इससे आत्मा की उच्चवृत्ति का हनन होता है। अहिंसा धर्म के उपासक के लिये निजी स्वार्थ—निजी लोभ के निमित्त स्थूल हिंसा का त्याग पूर्ण आवश्यक है। जो मनुष्य अपनी विषय तृष्णा की पूर्ति के लिये स्थूल प्राणियों को क्लेश पहुंचाता है, वह कभी किसी प्रकार अहिंसाधर्मी नहीं कहलाता। अहिंसक गृहस्थ के लिये यदि हिंसा कर्तव्य है तो वह केवल परार्थक है। इस सिद्धान्त से विचारक समझ सकते हैं कि, अहिंसाव्रत का पालन करता हुआ, भी गृहस्थ अपने समाज और देश का रक्षण करने के लिये युद्ध कर सकता है—लडाई लड सकता है। इस विषय की सत्यता के लिये हम यहां पर ऐतिहासिक प्रमाण भी दे देते हैं—

गुजरात के अन्तिम चौलुक्य नृपति दूसरे भीम (जिसको भोला भीम भी कहते हैं) के समय में, एक दफह उसकी राजधानी अणहिलपुर पर मुसलमानों का हमला हुआ। राजा उस समय राजधानी में हाजर न था—केवल राणी मौजूद थी। मुसलमानो के हमले से शहर का संरक्षण कैसे करना इसकी सब अधिकारियों को बडी चिन्ता हुई। दंडनायक (सेनाधिपति) के पद पर उस समय एक आभु नामक श्रीमालिक वणिक श्रावक था। वह अपने अधिकार पर नया ही आया हुआ था, और साथ में वह बडा धर्माचरणी पुरुष था। इसलिये उसके युद्धविषयक सामर्थ्य के बारे में किसीको निश्चित विश्वास नहीं था। इधर एक तो राजा स्वयं अनुपस्थित था, दूसरा राज्यमें कोई वैसा अन्य पराक्रमी पुरुष न था, और तीसरा, न राज्यमें यथेष्ट सैन्य ही था। इस

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

लिये राणी को बडी चिन्ता हुई। उसने किसी विश्वस्त और योग्य मनुष्य के पाससे दंडनायक आमु की क्षमता का कुछ हाल जान कर स्वयं उसे अपने पास बुलाया और नगर पर आई हुई, आपत्ति के सम्बन्ध में क्या उपाय किया इसकी सलाह पूछी। तब दंडनायकने कहा कि यदि महाराणी का मुझ पर विश्वास हो और युद्ध संबंधी पूरी सत्ता मुझे सौंप दी जाय तो. मुझे श्रद्धा है कि मैं अपने देश को शत्रु के हाथ से बाल-बाल बचा लूंगा। आमू के इस उत्साहजनक कथन को सुनकर राणी खुश हुई और युद्ध संबंधी संपूर्ण सत्ता उसको देकर युद्धकी घोषणा कर दी। दंडनायक आमु ने उसी क्षण सैनिक संघटन कर लढाई के मैदान में डेरा किया। दूसरे दिन प्रातःकाल से युद्ध शुरू होने वाला था। पहले दिन अपनी सेना का जमाव करते करते उसे संध्या हो गई। वह व्रतधारी श्रावक था इसलिये प्रतिदिन उभय काल प्रतिक्रमण करने का उसको नियम था। संध्या के पडने पर प्रतिक्रमण का समय हुआ देख उसने कहीं एकांत में जाकर वैसा करनेका विचार किया। परंतु उसी क्षण मलूम हुआ कि उस समय उसका वहांसे अन्यत्र जाना इच्छित कार्य में विघ्नकर था, इसलिये उसने वहीं हाथी के होदे पर बैठे ही बैठे एकाग्रता पूर्वक प्रतिक्रमण करना शुरू कर दिया। जब वह प्रतिक्रमण में आने वाले—"जेमे जीवा विराहिया--एगिंदिया--बेइंदिया" इत्यादि पाठ का उच्चारण कर रहा था. तब किसी सैनिक ने उसे सुन कर किसी अन्य अफसर से कहा कि—देखिए जनाब हमारे सेनापति साहब तो इस लढाई के मैदान में भी—जहां पर शस्त्रास्त्र की झनाझन हो रही है. मारो मारो की पुकारें बुलाई जा रही हैं वहाँ—एगिंदिया बेइंदिया कर रहे हैं। नरम नरम सीरा खाने वाले ये श्रावक साहब क्या बहादुरी बतायेंगे। धीरे धीरे यह बात ठेठ रानी के कान तक पहुंची। वह सुनकर बहुत संदिग्ध हुई परन्तु उस समय अन्य कोई विचार करने

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

का अवकाश नहीं था, इसलिये भावि के ऊपर आधार रखकर वह मौन रही। दूसरे दिन प्रातःकाल ही से युद्ध का प्रारंभ हुआ। योग्य संधि पाकर दंडनायक आमूने इस शौर्य और चातुर्य से शत्रु पर आक्रमण किया कि जिससे क्षणभर में शत्रु के सैन्य का भारी संहार हो गया और उसके नायक ने अपने शस्त्र नीचे रखकर युद्ध बन्ध करने की प्रार्थना की। आमू का इस प्रकार विजय हुआ देख कर अणहिलपुरकी प्रजा में जय जय का आनन्द फैल गया। राणी ने बडे सम्मानपूर्वक उसका स्वागत किया और फिर बडा दरबार करके राजा और प्रजा की तरफ से उसे योग्य मान दिया गया। उस समय हँस कर राणी ने दंडनायक से कहा कि—सेनाधिपति, जब युद्ध की व्यूह रचना करते करते बीच ही में आप—" एगिंदिया बेइंदिया " बोलने लग गये तब तो आपके सैनिकों को ही यह संदेह हो गया था कि, आपके जैसा धर्मशील और अहिंसा प्रिय पुरुष मुसलमानों जैसों के साथ लडने वाले इस क्रूर कार्य में कैसे धैर्य रख सकेगा। परन्तु आपकी इस वीरता को देखकर सबको आश्चर्य निमग्न होना पडा है। यह सुनकर कर्तव्यदक्ष उस दंडनायक ने कहा कि—महाराणि, मेरा जो अहिंसाव्रत है. वह मेरी आत्मा के साथ सम्बन्ध रखता है। मैंने जो " एगिंदिया बेइंदिया " के वध न करने का नियम लिया है वह अपने स्वार्थ की अपेक्षा से है। देश की रक्षा के लिये और राज्य की आज्ञा के लिये यदि मुझे वध कर्म की आवश्यकता पडे तो वैसा करना मेरा कर्तव्य है। मेरा शरीर यह राष्ट्र की संपत्ति है। इसलिये राष्ट्र की आज्ञा और आवश्यकतानुसार उसका उपयोग होना ही चाहिए। शरीरस्थ आत्मा या मन मेरी निजी संपत्ति है उसे स्वार्थीय हिंसाभाव से अलिप्त रखना यही मेरे अहिंसाव्रत का लक्षण है। इत्यादि इस ऐतिहासिक और रसिक उदाहरण से विज्ञ

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

पाठक भली भांति समझ सकेंगे कि, जैन गृहस्थ के पालने योग्य अहिंसावत का यथार्थ स्वरूप क्या है ।

सर्व-अहिंसा और उसके अधिकारी ।

जो मनुष्य अहिंसावत का पूर्ण रूप से पालन करते हैं वे यति-मुनि-भिक्षु श्रमण-संन्यासी-महाव्रती इत्यादि शब्दों से संबोधे जाते हैं । वे संसार के सब कामों से दूर और अलिप्त रहते हैं । उनका कर्तव्य केवल निज का आत्मकल्याण करना और जो मुमुक्षु उनके पास आवे उसको आत्मकल्याण का मार्ग बताना है । विषय-विकार और कषायभाव से उनका आत्मा ऊपर रहता है। जगत् के सभी प्राणी उनके लिये आत्मवत् हैं । यह मैं और यह दूसरा, इस प्रकार का द्वैत-भाव उनके हृदय में से नष्ट हो जाता है । उनके मन, वचन और कर्म तीनों एक रूप होते हैं । सुख-दुःख या हर्ष-शोक उनके मनमें एक ही स्वरूप दिखाई देते हैं । जो पुरुष इस प्रकार की स्वरूपावस्था को प्राप्त कर लेता है वही महाव्रती है, और उसीसे अहिंसा का सर्वतः पालन किया जा सकता है । ऐसे महाव्रती के लिये न स्व-अर्थ हिंसा कर्तव्य है और परार्थ । वह स्थूल या सूक्ष्म सभी प्रकार की हिंसा से मुक्त रहता है ।

यहां पर यह एक प्रश्न होता है कि, क्या इस प्रकार के जो महाव्रती होते हैं वे खाते पीते या चलते बैठते हैं कि नहीं ? । अगर वे वैसा करते हैं तो फिर वे अहिंसा का सर्वतः पालन करने वाले कैसे कहे जा सकते हैं ? क्योंकि खाने पीने या चलने बैठने में भी तो जीव हिंसा होती ही है ।

इसका समाधान यह है कि—यद्यपि यह बात सही है कि, उन महाव्रतियों से भी उक्त क्रियायों के करने में सूक्ष्म प्रकार की जीवहिंसा होती रहती है; परन्तु उनकी उच्च मनोदशा के कारण उनको उस

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

हिंसा-जन्य पाप का स्पर्श बिलकुल नहीं होता और इस लिये उन का आत्मा इस पाप-बंधनसे मुक्त ही रहता है। जब तक मनुष्य का आत्मा इस स्थुल शरीर में अधिष्ठाता होकर वास करता रहता है तब तक इस शरीर से वैसी सूक्ष्म हिंसा का होना अनिवार्य है। परन्तु उस हिंसा में आत्मा का किसी प्रकार का संकल्प-विकल्प न होने से वह उससे अलिप्त ही रहता है। महाव्रतियों के शरीर से होने वाली यह हिंसा द्रव्य हिंसा या स्वरूप-हिंसा कहलाती है; भाव-हिंसा या परमार्थ-हिंसा नहीं। क्योंकि इस हिंसा में आत्मा का कोई हिंसक-भाव नहीं है। हिंसा-जन्य पाप से वही आत्मा बद्ध होता है जो हिंसक-भाव से हिंसा करता है। जैनों के तत्त्वार्थ सूत्र में हिंसा का लक्षण बताते हुए यह लिखा है कि—

'प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा।'

अर्थात्—प्रमत्त भाव से जो प्राणियों के प्राण का नाश किया जाता है वह हिंसा है। प्रमतभाव का तात्पर्य है विषय-कषाय युक्त होकर, जो जीव विषय-कषाय के वश होकर किसी भी प्राणी को दुःख या कष्ट पहुंचाता है वह हिंसा के पाप का बन्धन करता है। इस हिंसा की व्याप्ति केवल शरीर से कष्ट पहुंचाने तक ही नहीं है परंतु वचन से वैसा उच्चारण और मन से वैसा चिन्तन करने तक है। जो विषय-कषाय के वश हो कर दूसरों के लिये अनीष्ट भाषण या अनीष्ट चिन्तन करता है वह भी भाव-हिंसा या परमार्थ-हिंसा करता है। और इसके विपरीत, जो विषय-कषाय से विरक्त है, उससे यदि कभी किसी प्रकार की हिंसा हो भी गई तो उसकी वह हिंसा परमार्थ से हिंसा नहीं है। एक व्यावहारिक उदाहरण से इसका स्वरूप स्पष्ट समझ में आ जायगा।

एक पिता अपने पुत्र को या गुरु अपने शिष्य की किसी बुरी प्रवृत्ति से रुष्ट हो कर उसके कल्याण के लिये कठोर वचन से या शरीर से उसकी ताडना करता है, तो वह पिता या गुरु लोकदृष्टि में कोई निन्दनीय

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

या दण्डनीय नहीं समझा जाता। क्योंकि पिता या गुरु का वह व्यवहार द्वेष-जन्य नहीं है। उस व्यवहार में सद्बुद्धि रही हुई है। इसके विपरीत जो कोई मनुष्य द्वेष वश हो कर किसी मनुष्य को गाली गलोच या मारपीट करता है, तो वह राज्य या समाज की दृष्टि में दण्डनीय और निन्दनीय समझा जाता है। क्योंकि वैसा व्यवहार करने में उसका आशय दुष्ट है। यद्यपि इन दोनों प्रकार के व्यवहारों का बाह्य स्वरूप समान ही है तथापि आशय भेद से उनके भीतरी रूप में बड़ा भेद है। इसी प्रकार का भेद द्रव्य और भाव हिंसादि के स्वरूप में समझना चाहिए।

वास्तव में हिंसा और अहिंसा का रहस्य मनुष्य की भावनाओं पर अवलम्बित है। किसी भी कर्म या कार्य के शुभाशुभ बन्धन का आधार कर्ता के मनोभाव ऊपर है। मनुष्य जिस भाव से जो कर्म करता है, उसी अनुसार उसे फल मिलता है। कर्म का शुभाशुभपना उसके स्वरूप में नहीं रहा हुआ है, किन्तु कर्ता के विचार में रहा हुआ है। जिस कर्म के करने में कर्ता का विचार शुभ है, वह शुभ कर्म कहलाता है और जिस कर्म के करने में कर्ता का विचार अशुभ है वह अशुभ कर्म कहलाता है। एक डाक्टर किसी मनुष्य को शस्त्रक्रिया करने के लिये जो क्लोरोफॉर्म सुंघा कर बेहोश बनाता है उसमें और एक चोर या खूनी किसी मनुष्य को धन या जीवित हरन करने के लिये जो क्लोरोफॉर्म सुंघा कर बेहोश करता है उसमें कर्म की क्रिया की दृष्टि से किंचित् भी फरक नहीं है। परन्तु फल की दृष्टि से जब देखा जाता है, तब डॉक्टर को तो बड़ा सन्मान मिलता है और चोर या खूनी को भयंकर शिक्षा दी जाती है। यह उदाहरण जगत् की दृष्टि से हुआ। अब एक दूसरा उदाहरण लीजिए, जो स्वयं मनुष्य की अंतरात्मा की दृष्टि में अनुभूत होता है। एक पुरुष अपने शरीर से जिस

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

प्रकार अपनी स्त्री से आलिंगन करता है, उसी प्रकार वह अपनी माता बहिन या पुत्री से आलिंगन करता है। आलिंगन के बाह्य प्रकार में कुछ भेद न होने पर भी आलिंगन कर्ता के आंतरिक भावों में बडा भारी भेद अनुभूत होता है। पत्नी से आलिंगन करते हुए पुरुष का मन और शरीर जब मलिन विकारभाव से भरा होता है, तब माता आदि के साथ आलिंगन करने में मनुष्य का मन निर्मल और शुद्ध सात्त्विक—वत्सल—भाव से भरा होता है। कर्म के स्वरूप में किंचित् फरक न होने पर भी फल के स्वरूप में इतना विपर्यय क्यों है, इसका जब विचार किया जाता है, तो स्पष्ट ही मालूम होता है कि, कर्म करने वाले के भाव में विपर्यय होने से फल के स्वरूप में विपर्यय है। इसी फल के परिणाम ऊपर से कर्ता के मनोभाव का अच्छा या बुरापन निर्णित किया जाता है; उसी मनोभाव के अनुसार कर्म का शुभाशुभ-पना माना जाता है। अतः इससे यह सिद्ध होगया कि धर्म-अधर्म—पुण्य—पाप—सुकृत-दुष्कृत का मूलभूत केवल मन ही है। भागवतधर्म के नारद पंचरात्र नामक ग्रंथ में एक जगह कहा गया है कि—

मानसं प्राणिनामेव सर्वकर्मैककारणम्।
मनोऽरूपं वाक्यं च वाक्येन प्रस्फुटं मनः॥

अर्थात् प्राणियों के सर्व कर्मों का मूल एक मात्र मन ही है। मन के अनुरूप ही मनुष्य की वचन (आदि) प्रवृत्ति होती है और उस प्रवृत्ति से उसका मन प्रकट होता है।

इस प्रकार सब कर्मों में मन ही की प्रधानता है। इस लिये आत्मिक विकास में सबसे प्रथम मन को शुद्ध और संयत बनाने की आवश्यकता है। जिसका मन इस प्रकार शुद्ध और संयत होता है वह फिर किसी प्रकार के कर्मों से लिप्त नहीं होता। यद्यपि जब तक आत्मा देह को

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

धारण किये हुए है, तब तक उससे कर्म का सर्वथा त्याग किया जाना असंभव है। क्योंकि गीता का कथन है कि—

' नहि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः। '

तथापि—

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेंद्रियः।
सर्वभूतात्ममूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥

इस गीतोक्त कथनानुसार—जो योगयुक्त, विशुद्धात्मा, विजितात्मा, जितेंद्रिय और सर्व भूतों में आत्मबुद्धि रखनेवाला पुरुष है, वह कर्म करके भी उससे अलिप्त रहता है।

ऊपर के इस सिद्धान्त से पाठकों की समझ में अब यह अच्छी तरह आजायगा कि, जो सर्वव्रती—पूर्णत्यागी मनुष्य है उनसे जो कुछ सूक्ष्म कायिक हिंसा होती है उसका फल उनको क्यों नहीं मिलता। इसी लिये कि, उनसे होने वाली हिंसा में उनका भाव हिंसक नहीं है। और बिना हिंसक-भाव से हुई हिंसा, नहीं कही जाती। इसलिये आवश्यक महाभाष्य नामक आप्त जैन ग्रंथ में कहा है कि—

असुभपरिणामहेऊ जीवाबाहो त्ति तो मयं हिंसा।
जस्स उ न सो निमित्तं संतो विन तस्स सा हिंसा ॥

अर्थात् किसी जीव को कष्ट पहुंचाने में जो अशुभ परिणाम निमित्तभूत है तो वह हिंसा है, और ऊपर से हिंसा मालूम देने पर भी जिसमें वह अशुभ परिणाम निमित्त नहीं है, वह हिंसा नहीं कहलाती। यही बात एक और ग्रंथ में इस प्रकार कही हुई है:—

जं न हु भणिओ बंधो जीवस्स वहेवि समिइगुत्ताणं।
भावो तत्थ पमाणं न पमाणं कायवावारो ॥

(धर्मरत्न मंजूषा, पृ. ८३२)

अर्थात् समिति-गुप्तियुक्त महाव्रतियों से किसी जीव का वध हो जाने

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

पर भी उसका उनको बन्ध नहीं होता क्योंकि बन्ध में मानसिक भाव ही कारणभूत है-कायिक व्यापार नहीं। यही बात भगवद्गीता में भी कही हुई है। यथा:—

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमांल्लोकान् न हन्ति न निबध्यते॥

अर्थात् जिसके हृदय में से 'अहंभाव' नष्ट हो गया है और जिसकी बुद्धि अलिप्त रहती है वह पुरुष कदाचित् लोकदृष्टि से लोगों को—प्राणियों को मारने वाला दीखने पर भी न वह उनको मारता है, और न उस कर्म से बद्ध होता है।

इसके विपरीत जिसका मन शुद्ध और संयत नहीं है—जो विषय और कषाय से लिप्त है वह बाह्य स्वरूप से अहिंसक दीखने पर भी तत्त्व से वह हिंसक ही है। उसके लिये स्पष्ट कहा गया है कि—

अहणंतो वि हिंसो दुट्ठतणओ मओ अहिमरोव्व।

जिसका मन दुष्ट—भावों से भरा होता है वह किसीको नहीं मारकर भी हिंसक ही है। इस प्रकार जैनधर्म की अहिंसा का संक्षिप्त स्वरूप है। (महावीरसे उधृत)

सातक्षेत्र.

क्षेत्रेषु सप्तस्वपि पुण्यवृद्धये, वपेद्धनं सम्प्रतिराजवद्धनी।
कृषीवलं केवलशालिदायकात्, वपेत्स किं योऽखिलसस्य लालसः॥ १॥

अर्थ—धनपात्र मनुष्यको चाहिये, कि संप्रति नरेश, की तरह पुण्यकी वृद्धिकी इच्छासे अर्थात् धर्मकी पुष्टिके लिये सात क्षेत्रोंमें धन व्यय करे, इस पर यह तर्क हो सकती है कि खेती करने वाला (कृषक) क्या चावल ही बीजता है?

नहीं नहीं सर्वही प्रकारके धान्योंको बीजता है। दृष्टान्तके तौर पर

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

किसी नगरमें कोई एक कोटिध्वज शाहुकार रहता था, उसने अपने अंत समयमें गामके चार प्रतिष्ठित पुरुषोंको बुलाकर अपनी संपूर्ण संपत्ति देदी और कहा कि तुमको विश्वास पात्र समझ कर आपनी पूंजी देता हूं। तत्पश्चात् मैं अपने अभीष्टको आप लोगोंके समक्ष प्रकाशित करता हूं, कि मेरे सात पुत्र हैं। और उनके पालन पोषण के निमित्त उपर्युक्त पूंजी तुम्हारे अधिकारमें अर्पण की जाती है, तुमको सर्वथा उचित है कि मेरी सम्पत्तिका अनुचित रीतिसे दुरुपयोग न करें, केवल इस संचित पूंजी को मेरे प्रिय अंगजों के पालन पोषण में ही व्यय करके उनको सदाके लिये हयात और आबाद रक्खें।

[उपनय घटना] संसार यह एक तरहका नगर है, वीर परमात्मा शाहुकार हैं। उन्होंने अपने निर्वाण के समय अपनी ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप अनंत सम्पत्ति श्रीसंघको सुपुर्द करके कहा कि हमारे बताये हुये अर्थात् हमारे स्थापन [कायम] किये हुये जिनबिम्ब १ जिनचैत्य २ सम्यग् ज्ञान ३ साधु ४ साध्वी ५ श्रावक ६ श्राविका ७ इन सात क्षेत्ररूप पुत्रोंका तुम सदा पालन, पोषण, रक्षण और निरीक्षणा करना, इन सात ही क्षेत्रोंका समान दृष्टिसे बचाव करना। इन सात क्षेत्रोंको मेरे निज पुत्र समझ कर समान भावसे पालना, और उत्पात, उपद्रवोंसे रक्षा करते रहना। गुणकारी, उपकारी, सहायक सामग्रीसे इन्हें उपचित करना। आशय यह है कि इनमेंसे किसीको भी न्यूनाधिक समझ कर बिलकुल घटाना बढाना नहीं, किसी पर भी भावकी न्यूनाधिकता न रखते हुये, सबको मेरे ही शरीरके अंगभूत मानना। इससे हमारा यह आशय नहीं कि देव द्रव्य ज्ञान द्रव्य साधु साध्वी, वा श्रावक श्राविका खाजावें!! ऐसा होना तीर्थंकर भगवानों की आज्ञासे साफ विरुद्ध है। हमारा आशय यह है कि हिन्दुस्थानमें आजकल ११ हजार जिनमंदिर गिने जाते हैं। हरएक समझदार समझ सकता है कि—

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जिनप्रतिमाकी पूजा में धूप–दीप–चंदन–बरास–वास–वाला–कुची–अंगलुहना–पंचामृत–कलस–थाल रकेबी चामर चंद्रवा–पूठिया चौकी–पानी–पूजारी–आदि अनेक वस्तुयें चाहिये, यह संसारभरके जैन जानते हैं। आक और धतूरेसे जिनप्रतिमा कहीं नहीं पूजी जाती। ३६ हजार मंदिरों की पूजाके लिये कमतीमें कमती प्रति मंदिर १०० रुपया सालाना भी गिना जाय तो भी हिसाब गिननेसे ३६ लाख रुपया वार्षिक खर्च मंदिरोंका आता है यह कार्य जैन समाजकी भक्तिसे उनकी उत्कृष्ट भावना से सहर्ष हो रहा है, तथापि प्रतिवर्ष नये मंदिरोंकी टिप्पणियाँ तडा मार उपराउपरी आ रही हैं, इससे अधिक लाभ क्या सो हमारी समझमें नहीं आता। जहाँ १० घरोंकी जैनवस्ति है वहाँ ५००० हजारके खर्चसे मंदिर बनवाया जाता है। उस कार्यमें अनेक गामोंको दाक्षिण्यतासे कहने कहानेसे साधुओंकी सिफारशोंके कारण शक्तिकेन होने पर भी पैसा देना पडता है। इसके बदले जिस गाममें एक जिनमंदिर है वहां उसीकी सेवाभक्ति नहीं होती तो दूसरा क्यों बनवाया जाता होगा ? जो रुपया उस दूसरे मंदिरमें खर्च करना है वह उस पहले मंदिरके निर्वाहके लिये जमा करके उसके व्याज वगैरहसे मूलमंदिरकी आशातना का परिहार क्यों न कराया जाय ? हमने गतवर्ष अनुभव करके देखा कि एक गाममें दो मंदिर हैं वहां प्रतिदिन १० आदमी भी पूजा नहीं करते होंगे इतनेमें वहां दो तीन और बन रहे हैं। सुना गया है कि उन मंदिरोंके तयार होनेमें करीबन १॥ लाख रुपया खर्च होगा ऐसी हालतमें इन्साफ की दृष्टिसे देखा जाय तो श्रावक श्राविका रूप दोनों क्षेत्रोंकी कैसी हालत होरही है उधर कोई ख्याल देता है ? अगर श्रावक श्राविका ही नहीं रहेंगे तो उन तुम्हारे बनवाए मंदिरोंको पूजेगा कौन ?

दूसरे धर्मो तर्फ दृष्टिपात करते हैं तो साफ तौर पर मालूम होता है

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

कि जो लोग आजसे २० वर्ष पहले हजारोंकी संख्यामें थे वह आज लाखोंकी संख्यामें आगये और जैन प्रजा करोडोंकी संख्यामेंसे लाखोंमें आगई। अब यह भी सोचनेका विषय है कि जिस धर्ममें विद्या नहीं, जिसमें ऐक्य नहीं. जिसमें कोई नायक नहीं, जिसका आनेका मार्ग रुक चुका है और जाना हमेशा जारी है उस धर्मकी, उस समाज या—संप्रदायकी बढती चढती कैसे हो सकती है ? बढती की तो बात ही दर किनारे रखो मूर्तिपूजाकी ही क्षति होरही है

शहर सूरतमें व्याख्यान देती हुई विदुषी एनीबेसेन्टने कहा था कि— " यद्यपि जैनधर्म पवित्र और प्राचीन है तथापि आज कलको उसकी छिन्नभिन्न दशाको देख कर बुद्धिबलसे मालूम देता है कि यह धर्म १०० वर्षसे ज्यादा दुनियामें नहीं टिकेगा " आज हम उस बात का प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं। दस वर्ष पहले जो मर्दुम शुमारी हुई थी उस वक्तमें और आज की संख्यामें १००००० आदमी की कमी हुई है। ४०००० मनुष्य सिर्फ मुंबई इलाकेमेंसे घटे हैं। इस अवस्थामें तो सबसे पहले श्रावक श्राविका रूप क्षेत्रकी सार संभाल करना चाहिये।

॥ जिनबिम्ब ॥

"बिम्बम् महल्लघु च कारितमत्र विद्युन्माल्यादिवत् परभवेऽपिशुभाय जैनम्। ध्यातुर्गुरुर्लघुरपीप्सितदायिमंत्रप्राग्दौस्थाभावि घनविघ्नभिदे न किं स्यात्?।२।

इस लोकमें छोटा या बडा एक भी जिन बिम्ब कराया होय, तो वह विद्युन्माली देवताको जैसे कल्याणका कारण हुआ वैसे सर्व भव्यात्माओंको हो सकता है। प्रसिद्ध बात है कि बडा इष्टफल देनेवाला मंत्र-ध्यान करनेवालेके दरिद्र को दूर नहीं करता अर्थात् करता है।

(विशेष विवेचन)

संसारके प्रत्येक ग्राम, नगर या जनपदमें देखनेसे साक्षी मिल सकती

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

है कि कोई किसी प्रकारसे और कोई किसी प्रकारसे परन्तु संसार की पटडी पर मनुष्यामात्र, संप्रदायमात्र, मूर्तिपूजक, बुतपरहस्त है। जो लोग बाहिरी तौरसे बुतपरस्ती को बुरा भी समझते हैं उनके घरों में उनकी सामाजिक संस्थाओं में उनके धार्मिकग्रन्थों पर, उनके पूज्यगुरुओंकी मूर्तियां दीख पडती हैं। दृष्टान्तके तौर पर समझिये, कि आर्यसमाज लोग मूर्तिपूजाके कट्टर विरोधी हैं; परन्तु उनके विद्यालयोंमें, उपदेशभवनोंमें "स्वामी दयानन्दजीके" फोटो भीतों पर लटकाए हुए मिलते हैं। वह लोग व्याख्यान देते समय बडे आदरभावसे, पूज्यबुद्धिसे हाथ लम्बा लम्बा कर बताते हैं, कि यह "सत्यधर्मके प्रचारक" यह मिथ्याडंबरोंके निवारक यह "संसारके उद्धारक" स्वामी दयानन्दसरस्वती अपने बनाये हुए अमुक ग्रन्थके अमुक पृष्ठ पर यह बात लिखते हैं।"

अब समझना चाहिये कि जिस मूर्तिके सामने हाथ लम्बाया जाता है, जिसे स्वामीजीके इशारेसे बताया जाता है, वह क्या स्वामीजीकी देह है? क्या वह स्वामीजीका वजूद है? क्या उसमें स्वामीजीकी आत्मा विराजमान है? उससे किसी किसमकी स्वामीजीकी गरज सर सकती है? नहीं किसी तरह भी नहीं इसी। प्रकार संसारके सम्पूर्ण संप्रदायोंमें किसी न किसीरूप मूर्तियोंका मानना सिद्ध है। जैन, बौद्ध, शैव, वैष्णव स भी प्राचीन समयसे मूर्तियोंके पूजक हैं। उसमें विशेष कर जैनधर्म में मूर्तिपूजा बडे आदर सत्कारसे की जाती है। परन्तु इतना तो अवश्य कहना पडेगा कि जैनसंप्रदाय मूर्तिको मूर्तिमान कर पत्थरके पुतले मानकर नहीं पूजता किन्तु वह जिस देव या गुरु की मूर्ति है उसकी अनुपस्थितिमें उसको उस मूर्तिके द्वारा स्मर्ण करके उसमूर्तिवालेके गुणोंको पूजता है। न कि सामने दिखाई देते उस बुतको। उस मूर्तिके द्वारा मूर्तिवाले महात्माकी जीवन चर्य्याको स्मर्ण करके उन अतीतकालकी घटनाओंको हृदयमें स्थान देकर

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

ब परमात्माकी यह मूर्ति है उसने फलाने फलाने वक्त उस अपने वजूदके जरिये फलाना फलाना उत्तमकार्य करके समाज और देशको ऋणी किय तथा जैसे कि कव्वाली

दीक्षा प्रभूकी जोवे जग पुण्यवन्त प्राणी (अंचली)
जय वामाजीके नंदा कटो जन्म जन्म फन्दा
कुलवृद्ध बोले वाणी, जग पुण्यवन्त प्राणी ॥ १ ॥
चकचूर मोह करियो, दालिद्र दूर हरियो ।
जिम होये वरसी दानी, जग पुण्यवन्त प्राणी ॥ २ ॥
पहुंचे बाहिर नगरिया, वरघोडेसे उतरिया ।
आश्रम पद उद्यानी, जग पुण्यवन्त प्राणी ॥ ३ ॥
अशोक वृक्ष हेठे, भूषण तजके बैठे ।
अटम तप मानी, जग पुण्यवन्त प्राणी ॥ ४ ॥
महाव्रत चार उचरे, वदि पोष मास सुचरे ।
एकादशी सुहानी, जग पुण्यवन्त प्राणी ॥ ५ ॥
परिवार शत तीनो, देवदूष्य इंद्र दीनो ।
प्रभु होए तूर्य ज्ञानी, जग पुण्यवन्त प्राणी ॥ ६ ॥
नंदीश्वरे सुर जावे, माता पिता घर आवे ।
काउसग जिन ध्यानी, जग पुण्यवन्त प्राणी ॥ ७ ॥
आतम आनंद दाता, पार्श्व प्रभु है त्राता ।
वल्लभ वीर जानी, जग पुण्यवन्त प्राणी ॥ ८ ॥

प्रभुकी पूजा करते हुए सुज्ञ मनुष्यको चाहिये कि वह नीचे लिखी हुई बातोंको मनमें रखकर परमात्माकी पूजा करे । हे प्रभो इन चरणोंके बलसे आप देशोंदेश गामोंगाम घूम कर हमारे जैसे भूले भटकते जीवोंको मोक्षका मार्ग बता सके हैं इस लिये मैं आपके चरणोंकी पूजा करता हूं । इसी तरह नव ही अंगोंकी पूजा करते समय जो भावना लानी

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

चाहिये उस भावनाके सूचक दोहे प्रायः सर्वत्र जैन संप्रदायमें प्रसिद्ध हैं। जैसे कि—

जलभरी संपुटपत्रमें, युगलिक नर पूजन्त ।
ऋषभ चरण अंगूठडो, दायक भवजलअंत ।। १ ।।
जानुबले काउसग रह्या, विचर्या देशविदेश ।
खडे खडे केवल लह्यो, पूजो जानुनरेश ।। २ ।।

इत्यादि परंतु बहुत लोग पूजाके समय इन दोहोंको बडे ऊंचे आवाजसे गाते हैं, ऐसा होना अनुचित है। पूजा मौनसे ही होनी चाहिये। जैनदर्शनमें श्रद्धाबुद्धिसे जिनबिम्ब तयार करानेवाले के लिये प्रबल पुण्यका होना माना गया है, जैसे कि—

" अंगुष्टमानमपि यः प्रकरोति बिम्बम्, वीरावसानवृषभादिजिनेश्वराणां। स्वर्गे प्रधानविपुलर्द्धिसुखानि भुक्त्वा, पश्चादनुत्तरगतिं समुपैति धीरः ॥३॥"

जो धर्मधीर मनुष्य श्रीऋषभदेवसे लेकर श्रीमहावीर स्वामीपर्यंत २४ तीर्थंकरदेवोंकी अंगुष्ठ जितनी भी प्रतिमा बनवाता है वह स्वर्गमें असंख्य सुखभोग कर पीछेसे मोक्षसुखका भागी होता है।

भरतचक्रवर्तीने वज्रमयी अपनी अंगूठीमें हीरेकी प्रतिमा रखाई थी। गुजरातके प्रख्यात नरेश भीमदेवके प्रधानमंत्री विमलकुमार भी अपनी मुद्रिकामें जिनप्रतिमा रखकर राजदरबारमें जाया करते थे। मथुरा नगरी में जिस समय जैनधर्मका सर्वतो उत्कर्ष था, उस समय वहांके लोग अपने घरोंके दरवाजों पर भी जिनप्रतिमाकी स्थापना किया करते थे। कहां तक कहा जाय ? देवता लोग जब देवभूमि (स्वर्ग) में पैदा होते हैं पहिले ही जिनप्रतिमाकी वन्दना पूजना करते हैं। संप्रतिनरेश जो कि चंद्रगुप्त राजाके वंशज अशोकश्रीके पौत्र थे, उन्होंने सवा लक्ष जिनप्रतिमायें बनवाई थीं। जिनमें से आज भी कई एक उस समयकी प्रतिमायें भारतवर्ष के अन्यान्य प्राचीन स्थानोंमें से निकलती नजर आती हैं। जैसे अस्ट्रिया

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

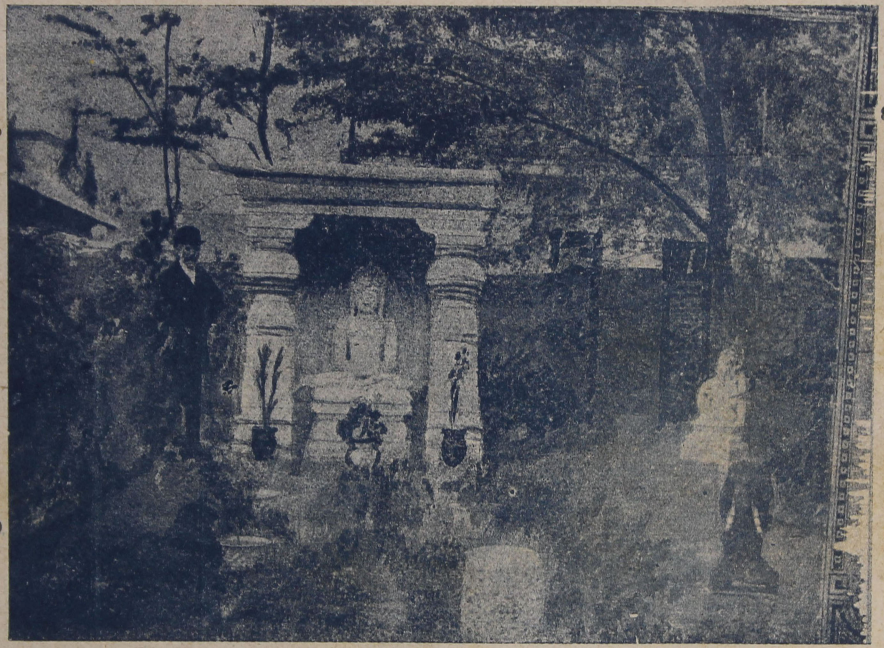

अष्ट्रीयाके अन्तर्गत हंगरी प्रान्तके बुदापेस्त शहरमें एक अंग्रेजके बगीचेमें
खोदते हुये निकली हुई महावीरकी प्रतिमा.

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar - Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

देशमें हंगरीप्रांतके " बूदापेस्त " शहरमें श्रीमन्महावीरस्वामीकी प्रतिमा निकली है [इसके विशेषवर्णनके लिये मेरा लिखी " गिरिनार कल्प" और ' संप्रतिराजा " नामक पुस्तकोंका देखना जरूरी है]

मूर्तिपूजकोंकी संख्या.		मूर्तिनिषेधकोंकी संख्या.	
बौद्ध	५८००००००	याहुदी	१२२०००००
केथोलिक	१००००००	प्रोटेस्टंट	१७१६०००००
ग्रीक	१००००००	पारसी	१०००००
हिंदु	२१६७०००००	मुसलमान	२२१८०००००
जैन	१०००००	ढूंढकजैन	३०००००
एनिमिष्ट	१५०२०००००	ब्रह्मप्रार्थनासमाज	५५००

सिख लोग भी गुरुओंकी मूर्तिकी पूजा करते हैं ।

कुछ वर्ष पहिले एक महानुभावने सरस्वतीमें " भारतकी मूर्ति कारीगरी " इस विषय पर लेख लिखकर बहुतसी नवीन जाननेलायक बातोंका दिग्दर्शन कराया था । उनके कुछ सरल सरल और उपयोगी वाक्योंको यहां उध्दृत किया जाता है । 'भारतवर्षकी प्राचीन शिल्पकलाका घनिष्ट संबंध ' धर्म ' से सर्वदा रहा है । प्राचीन भारतके चित्रकार तथा मूर्तिकार अपनी २ विद्या तथा कलाकौशल्यका उपयोग संसारकी साधारण वस्तुओंके संबंधमें न करते थे । भारतीय चित्रकार तथा मूर्तिकारोंका उद्देश देवताओंके चित्र तथा मूर्तियें बनाना है । प्राचीन भारतवर्षकी जितनी मूर्तियां अभी तक मिली हैं, प्रायः सबकी सब या तो किसी देवता या महापुरुषकी हैं । या अन्यधर्मसंबंधी घटनाओंके आधार पर बनाई गई हैं । भारतवर्षमें प्राचीन मूर्तिकारीके ' इतिहास ' का आरंभ अशोक के समयसे हुआ हो, और अन्त मुसलमानोके समयसे हुआ हो, ऐसा संभव तथा सिद्ध है ।

अर्थात् ईसाकी तीसरी शताब्दीसे लगाकर ईसाके बाद बारहवीं

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

शताब्दीके बाद तकका प्राचीन भारतीय मूर्तिकारी का इतिहास हमें मिलता है। कोई भी मूर्ति, या पत्थरकी कारीगरी जो अभी तक मिली है अशोकके पहिलेकी नही है। भारतवर्षकी प्राचीन मूर्तियें समयके अनुसार चार भागोंमें बाँटी गई हैं (१) मौर्यकाल ईसाके पूर्व तीसरी शताब्दीसे ईसाके पूर्व पहिली शताब्दी तक,

(२) 'कुषानकाल' ईसाके बाद पहिली शताब्दीसे तीसरी (ख) स्वदेशी कुषान मूर्तिकारी

(३) गुप्तकाल'—ईसाके बाद तीसरी शताब्दीसे छटी शताब्दी तक (४) 'मध्यकाल'—ईसाके बाद सातवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक

इस परामर्शमें जैनधर्म किसी अंशमें अपना निराला मन्तव्य रखता है, और यह मन्तव्य बुद्धिवादसे और ऐतिहासिक प्रमाणोंसे सत्य मालूम होता है। या तो श्रीमन्महावीरदेवके फैलाये साम्यवादको जबसे एक महात्माने पुनरुज्जीवित किया है, तबसे शत्रुकी मान्यता पर भी घृणा पैदा करनी बुरी मालूम देती है। हाँ मध्यस्थभावसे यथार्थ तत्त्व समझाना अपना कर्तव्य है। तथापि " युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः " यह नीति सभी के लिये प्रशस्त है, और सत्य कहना यह महात्माके सत्य साम्राज्यका भूषण है। यहां एक ही बात कह देनी उचित मालूम देती है, कि संसारमें ईश्वरवादी महाशय परमात्माके अवतार मानते ही हैं, तो जब वह अवतार धर्मका उद्धार करके अंतरित हो जाते हैं तब उनके ऋणी जीवात्मा उनकी मूर्तियां क्यों न बनाते होंगे ? जैनसंप्रदायमें तो मूर्तिका रहना असंख्यवर्षों तक फरमाया है। अर्थात् मूर्ति असंख्यवर्षों तक रह सकती है। इतना ही नहीं बल्कि इसके अनेक दृष्टान्त भी उपस्थित हैं। गुजरातमें पाटणके समीप चारुप ग्राममें पार्श्वनाथस्वामी, की प्रतिमा है, वह असंख्यवर्षोंकी बनी

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

हुई है। ऐसे ही "राधनपुर" केपास 'शंखेश्वर' ग्राममें शंखेश्वरपार्श्वनाथ की मूर्ति है, जो आजसे असंख्य वर्ष पहिलेकी हुई मानी जाती है। श्रवणवेलगुलके इतिहासोंसे पता लगता है कि वहांका राज्य जैनधर्म की चिरकालसे उपासना करता था। जैनधर्मके उपदेशकोंका परिचय न रहनेसे वहांके किसी एक राजाने जैनधर्मका त्याग कर अन्यधर्मका पालन करना शुरू कर दिया, और जो जो जिनचैत्योंके रक्षणके लिये पूर्वराजाओंकी ओरसे जागीरें भेट की हुई थीं, वह भी उसने जप्त कर ली। दैवयोग वहां भूकम्प हुआ, बहुतसे गामोंकी बडी हानी होगई। इससे राजाके मनमें शंका उत्पन्न हुई कि मैंने चिरपालित जैनधर्मको छोड दिया है इसी कारण मेरे राज्यकी दुर्दशा हुई है। वह फिर वीरवचनोंका भक्त होकर जिनधर्मकी उपासना करने लगा, और स्वाधीन की हुई संपत्ति भी जिनचैत्योंको भेट कर दी। इस बातके विशेष ज्ञानके लिये "सनातन जैन पु. दूसरेका अंक तीसरा" देखो। इससे इतना ही आशय लेनेकी आवश्यकता है, कि पूर्वकाल में जैनधर्म राष्ट्रीय धर्म था। राजा तथा प्रजा सभी इसके अनुयायी थे। राजा 'शिवप्रसाद सितारेहिन्द' ने जैन न हो कर भी अपने निर्माण किये हुये "भूगोलहस्तामलक" में लिखा है कि दो ढाई हजार वर्ष पहिले दुनियां का अधिक भाग जैनधर्मका उपासक था।

जिनचैत्य (जिनमंदिर).

"रम्यं येन जिनालयं निजभुजोपात्तेन कारापितं,
मोक्षार्थं स्वधनेन शुद्धमनसा पुंसा सदाचारिणा।
वेद्यं तेन नरामरेन्द्रमहितं तीर्थेश्वराणां पदम्,
प्राप्तं जन्मफलं कृतं जिनमतं गोत्रं समुद्योतितं॥

अर्थ—जिस शुद्धमनवाले सदाचारी भव्यात्माने अपने हाथके कमाये

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

हुए धनसे आत्मकल्याणके निमित्त जिन मंदिर बनवाया है, उसने संसारमें सारभूत तीर्थंकर पद प्राप्त किया माना जाता है। उसने अपने जन्मका फल प्राप्त कर लिया, और अपने गोत्रको परम पवित्र करनेके साथ जिनशासनको उन्नतिके शिखर पर पहुंचाया।

विशेष वर्णन।

अपने रहने बैठनेके लिये मकान, माले, आलने, घोंसलें, कौवे, चिडियें, शुक, तीतर इत्यादि पक्षि लोग भी बना लेते हैं। मनुष्य तो सर्वोत्कृष्ट शक्ति और ज्ञान संपन्न माना जाता है यदि वह अपने निवासका स्थान बना ले, तो उसमें आश्चर्य ही क्या है? परन्तु भाग्यवान वही माना जाता है कि जो अपनी शक्तिके अनुसार "जिनचैत्य" निर्माण कराके न्यायोपार्जित लक्ष्मीको सफल करे। आचार्य श्री बप्पभट्टि सूरिजीने गवालियरके आम राजा पर महान उपकार किया था। अतएव राजा पुनः पुनः उनकी भावभक्ति करनेमें तत्पर रहता था, बल्कि बप्पभट्टि सूरिजीकी सूरिपद प्रतिष्ठाके समयमें भी, भूपति स्वयं उपस्थित हुआ था। और जैनश्रीसंघमें आगेवान बनकर अपने कोषमेंसे एक करोड सोनामोहरा खर्च कर उसने वि. सं. ८११ में आचार्य महाराजका पदमहोत्सव किया था।

एक समय सूरीजी महाराजने गवालियर नगरकी तर्फ प्रस्थान किया, और वहां जाकर राजाको उपदेश देना आरंभ किया, उपदेश देते समय सूरिजीने यह कहा कि—

श्रीरियं पुरुषान् प्रायः कुरुते निजकिंकरान्।
कुर्वते किंकरी तां ये तैरसौ रत्नसू रसा ॥ १ ॥

अर्थ—विशेषकर लक्ष्मी ने मनुष्योंको अपना किंकर तो बना ही रखा है, लक्ष्मी के मदसे मोहित होकर मनुष्य अपने कर्तव्योंसे परान्मुख तो हो ही रहा है। तथापि जिन पुण्यात्माओंने, उसको अपने

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आदेशमें चलाया है, अर्थात् जिसने लक्ष्मीको अपनी इच्छानुकूल व्यय किया है, उसीसे यह पृथ्वी रत्नप्रसू कही जाती है !

इस उपदेशको सुन कर राजाने साढे तीनक्रोड सोनामोहरें गलवा कर स्वर्णकी अनेक प्रतिमायें बनवाई और उस विशाल मन्दिर, कि जिसमें वह प्रतिमायें स्थापन की गई थीं, का रंगमंडप बनानेमें २१ लाख सोना मोहरें व्यय कीं और सवा लाख सौनैये खर्च करके उन्होंने मूल मंडप का रिपेर काम कराया। आचार्य महोदयके उपदेशसे राजाने शत्रुंजय गिरिनारके मन्दिरोंका जीर्णोद्धार भी कराया (देखो उपदेश तरंगिणी) कलिकालकसर्वज्ञश्रीहेमचन्द्रसूरिजीके उपदेश से जिनधर्म प्राप्त करकेचौलुक्य कुलदीपकमहाराजकुमारपालदेवने तारंगाजी और खंभात प्रमुख स्थानोंमें १००० नवीन जिनमंदिर बनवाये थे। अपने पिता त्रिभुवनपालणके नामसे पाटणमें उन्होने "त्रिभुवनपालविहार" नामक (पुर) बहत्तर देव कुलिका सहित विशाल मंदिर बनावाया था। उस परमार्हत ने २४सोनेकी २४रत्नकी, चौबीस पीतलकी इत्यादि अनेकानेक जिनप्रतिमा बनवाकर उस महा मन्दिरमें स्थापन कीथीं १२५ अंगुलप्रमाण अरिष्टरत्नकीप्रतिमा श्रीनेमिनाथ स्वामीकी बनवाकर मूलनायक पने स्थापन की थी। इस मन्दिरके बनवाने में ६ क्रोडअशर्फियाँ खर्चकर पुण्याधिक भूपालने जिन शासनकी और अपने पूज्य पिताकी प्रभूत सेवा बजाई थी। उस मन्दिरमें उदयन, आम्रदेव, कुबेरदत्त, अभयकुमार और बाहडदेव आदि अठारह मुख्य मुख्य धनपति श्रावक गीतगान नृत्यआदि ठाठ पूर्वक नित्यधर्म क्रिया किया करते थे। इस मंदिर को कुमार पालके उत्तराधिकारी अजयपाल ने नष्ट क दिया था, इस मंदिर की नींवमें से जो पाषाण की विशाल शिला निकली हैं उन्हें हमने अपनी नजरसे देखा है वे सब "गायकवाड" सरकारके स्वाधीन ह शरत् उनशिलाओंसे अनेक मंदिर तयार, या रिपेर हो सकते थे।

उपदेश तरंगीणीमें लिखाहै, कि सम्प्रतिराजा तीनखंड भरतक्षेत्रका वि-

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जय करके सोलह हजार मुकुटबन्धराजाओं को अपनी आणा मना कर उन सर्व भूपतियोंसे परिवृत हो कर उज्जयणीमें आया, तब लोगोंने बडे आडम्बर पूर्वक उसका प्रवेशोत्सव कराया। सर्व राजा प्रजाको यथोचित प्रीति दान देकर सर्वके उतारों की व्यवस्था कर जब अपनी पूज्य माताको प्रणाम करने गया तब माताने उसके आनेपर किसी भी प्रकारका हर्ष प्रकट न किया। सम्प्रति ने फिरसे नमस्कार कर के पूछा, पूज्य माता आधे भरत क्षेत्र को स्वाधीन करके मैं कई वर्षोंसे तुम्हारे चरणोंमें आया हूँ तथापि तुम्हारे चेहरे पर जैसी चाहिये वैसी खुशी न देख कर मु मेरे किसी अपराधकी आशंका होती है। परन्तु बारम्बार स्मरण करनेपर भी मुझे मेरा कोई दोष याद न आनेसे हृदय बड़ा व्याकुल हो रहा है। अगर अज्ञानता से जो कोई दोष मुझसे हुआ हो तो आप पुत्रवत्सला हो मुझे क्षमा प्रदान करो। माताने गंभीर स्वरसे जवाब दिया, पुत्र आज तू संसारमें पूरा पुण्यवान है। तेरी भाग्यरेखा प्रतिदिन चढती है, तेरी कीर्ति यह मेरी ही कीर्ति है, परन्तु "नरकान्तममू राज्यम् स्मृतम्" इस वाक्यको मूल कर तेरा मन आरंभमें मशगूल है यह मेरी उदासीका कारण है। अगर तू दिग्विजय के क्षेत्रोंमें प्रतिग्राम प्रति नगर एक २ चैत्य भी बंधाता रहता तोभी तेरा आरंभजन्य पाप अल्प होता रहता, और मुझे तेरा मुख देख कर खुशी भी होती। इस बातको सुनकर राजाने निमित्तियोंको बुलाकर पूछा मेरा आयु कितने वर्षोंका है? निमित्तियोंने राजाका आयु १०० वर्षका बतलाया। राजाने आज्ञा दी कि. १०० वर्षके ३६००० दिन होते हैं, मेरे आयुके दिनों जितने जिन चैत्य मेरे राज्यमें तैयार होने चाहिये।

मंत्रियोंने वैसा ही करना शुरू किया। प्रसिद्ध है कि—कमसे कम एक मन्दिर रोज नवीन तैयार कराके राजा अपनी माताके चरणोंमें वन्दना किया करता था, और नया समाचार दे कर उनके आदेशका पालन

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

किया करता था। लिखा भी है कि " भवन्तिहि महात्मानो गुर्वाज्ञा-भंगभीरवः "।

सोलहवीं शताब्दीमें रत्नमण्डणगणिने ' उपदेशतरंगिणी ' नामक ग्रंथ बनाया है वह अपने सत्तासमयमें लिखते हैं कि वर्त्तमान समयमें भी सिन्धुदेशके मरोठपुरमें सम्प्रति राजाकी बनवाई ८५ हजार पीतल की प्रतिमायें मौजूद हैं।

तपगच्छनायक श्री धर्मघोषसूरिजी के उपदेशसे पेथडशाह और उनके लडके झांझण शाहने विक्रम संवत् १३२१ में " जीरावला" पार्श्वनाथ " शत्रुंजयगिरि " वगैरेहतीर्थोंपर (८६)जिनमंदिर बनवा येथे; और उन सर्व मंदिरोंके शिखरों पर सोनेके कलस चढाये थे। इतना ही नहीं बल्कि—" दौलताबाद " " ओंकारपुर " वगैरह नगरोंमे अन्य-दर्शनानुयायी लोग धर्मद्वेषके कारण मंदिर नही बनाने देते थे, पेथड-शाह समझते थे कि इन इन स्थानो मे मंदिरो का होना खास लाभका कारण है। इस लिये उन्हों ने खुद वहां जाकर उन गाम नग-रोंके राजाओंके मंत्रिलोगोंके नामसे दानशालाएँ जारी करदी, यथेच्छ खान पान मिलनेसे देश देशान्तरके याचक लोग मंत्रिलोगोंका यश गाने लगे। मंत्रियोंने सोचा कि हमने तो किसीको कुछ दिया नहीं। यह सब याचक हमारी कीर्ति गा रहे हैं इसमे कोई खास कारण होना चाहिये। दर्याफ्त करने पर मालूम हुआ कि " मांडवगढ " का राजमान्य पेथडशाह मंत्री यहां आया हुआ है, उसने अपनी सज्जनतासे हमको यशस्वी बना दिया है। इस लिये हमको भी चाहिये कि उस सुयोग्यकी योग्यताके अनुसार उसे इच्छित देकर सन्मानित करना, और अपने सिरचढे हुए ऋणको उतारना। यह सोचकर उन्होने बडी प्रतिष्ठापूर्वक पेथडशाहको अपने पास बुलाया। बहुत कुछ मानसन्मा-न देकर कहा " आप जैसे धर्ममूर्ति—पुन्यात्माओंका हमारे यहां आना

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

ही असीम उपकारका कारण है, तो फिर हमारे नामकी दानशालाएँ खोल कर निष्कारण यश और कीर्तिके भागी बनाकर आप हमको अति ऋणी क्यो बना रहे हैं ? भला हम इस आपके उपकाररूप बोझेको कैसे उतार सकेंगे ? संसारमे उपकारके बदलेमे प्रत्युपकारके करनेवाले तो जगह २ सुलभ हैं परंतु विना ही प्रार्थनाके किये परका हित करनेवाले और उसमे भी कीर्ति अन्यको दिलानेवाले मनुष्य अव्वलतो जगत्मे हैं ही नही, और हैं भी तो कोई आप जैसे विरले ! ! ! धन्य है अपके जन्म और जीवितको !

" आत्मार्थं जीवलोकेऽस्मिन्, को न जीवति मानवः ? ।
" परं परोपकारार्थं, यो जीवति स जीवति ।। १ ।।
" परोपकारशून्यस्य, धिग्मनुष्यस्य जीवितम् ।।
" जीवंतु पशवो येषां, चर्माप्युपकरिष्यति ।। २ ।।

अपनी जीवन वृत्ति के निर्वाहके लिये जीवमात्र अनेकानेक उपाय कर रहे हैं, कोई सीता है, कोई घडता है, कोई बुनता है, कोई तनता है, कोई खरीदता है, कोई बेचता है, एक दाता है, अन्य ग्राहक है, किसीकी किसीकी वाणिज्यसें, अनेकोंकी जलसे, अनेकोकी इंधनसें, क्षेत्रसे, कईयोंकी वस्तिसे, कईयोंकी वनसे, आजीविका चल रही है । जोहरी जवाहरात के, बजाज बजाजीके, शराफ शराफीके,परीक्षक परीक्षाके, दलाल दलालीके,एवं अदनासे अदना और बडेसे बडा जीवमात्र अपनी अपनी क्रियासे आजीविका करता है, यह सर्व क्रियाएँ मनुष्य अपनी जीवनचर्याके निर्वाहके लिये करते हैं । संसारमें ऐसा कोईभी जीवात्मा है कि जिसकी प्रवृत्ति अपने जीवननिर्वाहके लिये न हो ? हां यह बात एक और है कि—किसीको असीम संपत्ति होते भी जलन बलन लगी ही रहती है, और कोई स्वल्प लाभसे भी संतुष्ट रहता है । मंमण क्रोडों, बल्कि अबजों रुपयोंके होते हुए भी आर्त्तरौद्रसे दिन गुजारता था, और पूनिया श्रावक

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

प्रतिदिनकी ६ दुकडेकी कमाई में भी संतोष मानता था। परंतु प्राणीमात्र अपने अपने आत्मामिमत स्वार्थके साधन में प्रवीण होते है। ऐसा कोई चार खूंटमें शायदही होगा जो अपने स्वार्थ को मनसे भी मूलकर परकार्यको सादर साधन करता हो। जगतमें शुभजीवन उसी पुन्यात्माका है जो परोपकार के लिये जीता हो।। १ ॥ उस मनुष्यका जीवन असार है, असार ही नहीं बल्कि धिक्कारका स्थान है, जिसने अपने अमूल्य समयको व्यर्थ धूलधोकर गुमा दिया है। उस निकम्मे मनुष्यकी अपेक्षा पशुओंका जीवन अच्छा है कि जिनसे दुनियाके असंख्य काम सुधरते हैं। जीना तो बहुत बडी चीज है बल्कि जिस जीते जागते मनुष्यने परोपकार करना नहीं सीखा उसके जीनेकी अपेक्षा मरेहुए पशु भी अच्छे हैं कि जिनके चामसे भी संसारके अनेक काम बनते हैं। शास्त्रासिद्ध बात है कि "देवता-विषयोंमें मग्न रहते हैं, नरकके नारकियोंको दुक्खोंसे फुरसत नहीं, तिर्यंच तो उपकारको समझते ही नहीं। क्योंकि वह अज्ञानी हैं। सिर्फ उपकारका अधिकार है तो मनुष्योंको ही है। फिर सोचना चाहिये कि अधिकारीही अधिकारसे पराङ्मुख रहेगा तो नीचे लिखा हुआ वाक्य क्या झूठा हः? अधिकारको पाय कर करे न परउपकार।

ताहुके अधिकारमें रह्यो न आदि अकार!!!

॥ समकित के ६७ भेद ॥

[चार सद्दहना]

(१) ' परमार्थ संस्तव '—जीवादि नव पदार्थोंका यथार्थ ज्ञान होना।

(२) 'परमार्थज्ञातृसेवन'—गीतार्थ साधु मुनिराजकी सेवाभक्तिका करना।

(३) 'व्यापन्नदर्शनवर्जन'—निन्हव, यथाछंद आदि वेशविडंबकोंका परिचय न करना।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

(४) 'कुदर्शनवर्जन'—मिथ्यादृष्टि विपरित श्रद्धावालेका परिचय न करना ।

[तीन लिङ्ग]

(५) शुश्रूषा—शास्त्रसिद्धान्तके सुननेकी तीव्र इच्छा ।

(६) धर्मराग—धर्मक्रिया प्रशस्त अनुष्ठान करनेमे अंतरंगप्रीति ।

(७) वेयावच्च—गुणवान साधु साध्वी श्रावक श्राविका की यथोचित सेवा ।

[१० प्रकारका विनय]

(८) अरिहंत विनय ।

(९) सिद्धविनय ।

(१०) चैत्यविनय ।

(११) श्रुतविनय ।

(१२) धर्म्मविनय ।

(१३) साधुविनय ।

(१४) आचार्यविनय ।

(१५) उपाध्यायविनय ।

(१६) प्रवचनविनय ।

(१७) दर्शन विनय ।

[तीन शुद्धि]

(१८) मनशुद्धि ।

(१९) वचनशुद्धि ।

(२०) कायाशुद्धि ।

[पांच दोषोंका वर्जन]

(२१) शंकादोषका वर्जन ।

(२२) आकांक्षा दोषका वर्जन ।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

(२३) विचिकित्सादोषका वर्जन ।
(२४) परतीर्थिक (धर्मविरोधी) की प्रसंसा न करना ।
(२५) परतीर्थिक का परिचय न करना ।

[८ प्रभावक]

(२६) समयके अनुसार शास्त्रका पाठी ।
(२७) धर्मकथा कहनेमें प्रवीण ।
(२८) वादविवादमें जयपताका लेनेवाला ।
(२९) निमित्त (ज्योतिःशास्त्र) का पारंगत।
(३०) उत्कृष्ट तपस्याका करनेवाला ।
(३१) रोहिणी प्रमुख विद्या जिसके सिद्ध हों ।
(३२) अंजनचूर्णादिके प्रयोगको जाननेवाला ।
(३३) कविता के भेदोंका जाननेवाला शीघ्रकवि ।

[पांच भूषण]

(३४) क्रियाकौशल्य—धर्मकार्यके करनेमें चतुराई ।
(३५) तीर्थसेवा—संविग्नपक्षि मनुष्योंका सहवास ।
(३६) भक्ति—तीर्थकरदेव और साधुवर्गका आदर ।
(३७) दृढता—समकितकी करनीमें स्थिरचित्त ।
(३८) प्रभावना—जिन शासनकी शोभाका बढाना ।

[पांच लक्षण]

(३९) अपराधी पर भी समभाव रखना ।
(४०) मोक्षकी सद अभिलाषा रखनी ।
(४१) संसारसे उदास रहना ।
(४२) दुखीको देख मनमें दया लानी ।
(४३) वीतरागके वचनों पर अचल श्रद्धा रखनी ।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

[६ प्रकारकी यातना]

अन्य तीर्थ के साधु को उसके माने कंचनकामनी शस्त्रादिक धारक देवके साथ ६ प्रकारका व्यवहार मोक्षके लिये नहीं करना ।

(४४) वंदना—हाथ जोडने ।

(४५) नमस्कार—शिर नमाना

(४६) दान—अन्नादिका देना ।

(४७) अनुप्रदान—वारंवार देना ।

(४८) आलाप—बुलाना ।

(४९) संलाप—पुनः पुनः बुलाना ।

[६ आगार]

(५०) राजाका आगार ।

(५१) समुदायका आगार ।

(५२) बलवानका आगार ।

(५३) देवताका आगार ।

(५४) गुरुनिग्रह ।

(५५) वृत्तिकान्तार ।

[६ प्रकारकी भावना]

(५६) समकितको चारित्र मूल समझना ।

(५७) समकितको चारित्ररूप प्रासादका द्वार मानना ।

(५८) समकितको चरित्रनिधान रखनेका खजाना समझना चाहिये ।

(५९) समकितको धर्मप्रासादकी नीव समझना चाहिये ।

(६०) समकित आधार है और चारित्र आधेय है ।

(६१) समकित चारित्र रसको रखनेका पात्र है ।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

[६ स्थानक]

(६२) जीव—आत्मा—चैतन्य है ।

(६३) और वह नित्य है ।

(६४) जीव कर्म्मोंका कर्त्ता है ।

(६५) जीव कर्म्मोंका भोक्ता है ।

(६६) निर्वाण—मोक्ष है ।

(६७) और उसका उपाय भी है ।

(२)

सम्यक्त्व एक प्रकार, दो प्रकार, तीन प्रकार, चार प्रकार, और पांच प्रकार होता हैं ।

एक प्रकार सम्यक्त्व. } वीतराग जिनेश्वर देवके कथन किये तत्त्व पदार्थ पर श्रद्धाका होना एक प्रकारका सम्यक्त्व कहा जाता है ।

दो प्रकार सम्यक्त्व. } जैसे मार्ग भूला हुआ कोई आदमी विनाही किसीके मार्ग बताये फिरता फिरता स्वयमेव मार्गपर आ जाता है और कोई मार्ग ज्ञाताके मार्ग के बतानेसे मार्गपर हो जाता है। इसी प्रकार कितनेक जीवोंको स्वाभाविक सम्यक्त्व प्राप्त हो जाता है, उस सम्यक्त्वको 'नैसर्गिक' सम्यक्त्व कहते हैं और कितनेक जीवोंको गुरु महाराजके उपदेशसे सम्यक्त्व प्राप्त होता है उस सम्यक्त्वको 'औपदेशिक' सम्यक्त्व कहते हैं । एवं सम्यक्त्वके दो प्रकार हैं ।

अथवा 'निश्चय सम्यक्त्व' और 'व्यवहार सम्यक्त्व' की अपेक्षा सम्यक्त्व दो प्रकारका है । आत्मा का वह परिणाम कि जिसके होनेसे ज्ञानादि मय आत्माकी शुद्ध परिणति होती है उसको 'निश्चयसम्यक्त्व' कहते हैं और कुदेव, कुगुरु, कुमार्गको त्याग कर सुदेव, सुगुरु और सुधर्म का स्वीकार करना उसको 'व्यवहारसम्यक्त्व' कहते हैं । अथवा वीतराग

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सम्यक्त्व 'निश्चय सम्यक्त्व' और सराग सम्यक्त्व 'व्यवहार सम्यक्त्व ।'

अथवा 'द्रव्यसम्यक्त्व' और 'भावसम्यक्त्व' की अपेक्षा सम्यक्त्व दो प्रकार है । जिनेश्वर देवका कहा वचन ही तत्त्व है ऐसी श्रद्धा तो है परंतु परमार्थ नहीं जानता है, ऐसे प्राणीके सम्यक्त्वको 'द्रव्यसम्यक्त्व' कहते हैं । और परमार्थको जाननेवालेके सम्यक्त्वको 'भावसम्यक्त्व' कहते हैं । अथवा क्षायोपशमिक सम्यक्त्व पौद्गलिक होनेसे द्रव्यसम्यक्त्व है और क्षायिक तथा औपशमिक सम्यक्त्व आत्मपरिणाम होनेसे 'भाव-सम्यक्त्व' है ।

(३)

तीन प्रकार सम्यक्त्व } १ कारक, २ रोचक, और ३ दीपक, ऐसे तीन प्रकार सम्यक्त्वके होते हैं । देववंदन, गुरु वंदन, सामायिक प्रतिक्रमण आदि जिनोक्त क्रियाओंके करनेसे जो सम्यक्त्व होवे उसको 'कारक साम्यक्त्व' कहते हैं । इन्हीम रुचि होनेसे 'रोचक सम्यक्त्व' कहा जाता है । स्वयं मिथ्या दृष्टि होने पर भी दूसरोंको उपदेश आदि द्वारा दीपकवत् प्रकाश करे अर्थात् दूसरे जीवोंको सम्यक्त्वकी प्राप्ति करावे वह 'दीपक सम्यक्त्व' है ।

चार प्रकरका सम्यक्त्व. } पूर्वोक्त क्षायोपशमिकादि तीनों सम्यक्त्वके साथ सास्वादनको मिलानेसे सम्यक्त्व चार प्रकारका होता है । औपशमिक सम्यक्त्वसे च्युत होकर मिथ्यात्वके सन्मुख हुआ जीव जबतक मिथ्यात्वको नहीं प्राप्त करता तबतक के उसके परिणाम-विशेषको सास्वादन सम्यक्त्व कहते हैं ।

पांच प्रकारका सम्यक्त्व. } पूर्वोक्त चारोंके साथ वेदक को मिलानेसे पांच प्रकारका सम्यक्त्व कहा जाता है । क्षायोपशमिक सम्यक्त्वमें वर्त्तमान जीव जब प्रायः सातों प्रकृतियोंको क्षय करके सम्यक्त्व मोहनीय के अंतिम पुद्गलके रसका अनुभव करता

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

है उस समय के उस के परिणाम को वेदक सम्यक्त्व कहते हैं। वेदक सम्यक्त्वके बाद उसे क्षायिक सम्यक्त्व ही प्राप्त होता है। वेदक सम्यक्त्वका क्षायोपशमिक सम्यक्त्वमें अंतर्भाव होता है।

उत्तराध्ययन सूत्रके २८ वें अध्ययनमें—१ निसर्ग रुचि, २ उपदेश रुचि, ३ आज्ञारुचि, ४ सूत्ररुचि, ५ बीजरुचि, ६ अभिगमरुचि, ७ विस्ताररुचि, ८ क्रियारुचि, ९ संक्षेपरुचि और १० धर्मरुचि के नामसे सम्यक्त्वके दश भेद भी बताये है। प्राप्ति करावे उसको दीपकसम्यक्त्व क जो दूसरोंको सम्यक्त्व हते ै. यह दीपक सम्यक्त्व अभव्य जीव साधुपनेमें होता है। उसवक्त उसमें माना जाता है।

अथवा १ क्षायोपशमिक, २ औपशमिक और ३ क्षायिक की अपेक्षा तीन प्रकारका सम्यक्त्व माना जाता है।

अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ, तथा सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्रमोहनीय और मिथ्यात्व मोहनीय इन सातों कर्म प्रकृतिके क्षयोपशमसे जीवको जो तत्त्वरुचि उत्पन्न होवे उसको क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं। इन्ही सातोंके उपशम होनेसे आत्मामें जो परिणाम होता है उसे औपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं। इन्ही सातोंके क्षय होनेसे आत्मामें जो परिणाम विशेष होता है उसे क्षायिक सम्यक्त्व कहते हैं।

॥ ज्ञानभक्ति ॥

पठ पठति यतस्वाऽन्नादिना लेखय स्वैः,
स्मर वितर च साधौ ज्ञानमेतद्धि तत्त्वम्।
श्रुतलवमपि पुत्रे पश्य शय्यंभवोऽदा—
ज्जगति हि न सुधायाः पानतः पेयमन्यत् ॥ १ ॥

(अर्थ) हे भव्यात्माओं! ज्ञानका अभ्यास करो। और पढने पढाने वालोंको अन्नादिसे सहायता दो। न्यायोपार्जित द्रव्यसे ज्ञानके पुस्तक

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

लिखाओ, याद करो; साधु; साध्वी; श्रावक,–श्राविका; को ज्ञान दान दो।

यह ही तत्त्व है; देखो शय्यंभव सूरिजीने अपने पुत्रको स्वल्पमात्र भी ज्ञान देकर निस्तारित किया! संसारमें अमृतसे बढकर और कोई अधिक वस्तु है? ।। १ ।।

[वि. वि.]—एकठा किया हुआ धन साथ जानेवाला नहीं है। उसके पैदा करनेमें, रक्षण करनेमें, खर्चनेमें, अनेक कष्ट सहने पडते हैं। धनके नष्ट होजानेमें जो आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान होता है उससे जीव दुर्गतिमें चला जाता है।

ऐसी हुशामें मनुष्यको चाहिये कि अनेकानेक कष्टोंसे कमाए हुए पैसेको शुभमार्गमें व्यय करे। व्यय करनेके मार्गोंमेंसे सातमार्ग मुख्य हैं– जिनबिम्ब १ जिन–चैत्य २ ज्ञानोद्धार ३ साधु ४ साध्वी ५ श्रावक ६ श्राविकाप जिनचैत्य–जिनबिम्बका वर्णन पहलेकर दिया गया है। ज्ञानोद्धारके संबंधमें जानना चाहिये कि–लिखना लिखाना रक्षण, पालन करना अनेकानेक देशोंमें फैलाना; लाईब्रेरी करनी; शिक्षाका प्रचार करना। साधु साध्वी श्रावक श्राविका–और भाविक मार्गानुसारी जनोंको ज्ञानके तमाम साधन देने, दिलाने; शासन की शोभाके लिये दार्शनिक ग्रंथोंका प्रचार करना। उपदेशक तयार करके अन्यान्य देशोंमें उन्हें भेजकर धर्मका फैलाव करना, यह सब ज्ञानभक्ति कही जाती है। सर्व प्रयत्नसे सर्वज्ञाभषित ज्ञानका सर्वत्र प्रसार करके उसको सर्वोत्तम स्थान दिलाना यह उत्तमोत्तम ज्ञानसेवा–ज्ञान महिमा–ज्ञान–पूजा कही जाती है।

विक्रम की बारहवीं से सोलहवीं सदीतक साधुओं में पठन पाठन का प्रचार अल्प हो गया था, परंतु उसवक्त भी आचार्योंने कायदा कायम कर रखा था कि–साधु प्रतिदिन १०० श्लोक लिखे तो ही उसको विगय और शाक देना अन्यथा नहीं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

ज्ञानसागर सूरिजीके मुखसे मांडवगढ के रहनेवाले सुश्रावक संग्राम सिंह सोनी ने बडी श्रद्धा भक्तिसे श्री 'भगवती सूत्र' सुना; उस शासनप्रेमी वीरवचनोंके अनुरागीने जहां जहां 'गोयमा!' पद आता था वहां वहां एक एक अशर्फि रखकर ३६ हजार अशर्फियां खर्चकर संपूर्ण भगवती सूत्र की आराधना की। संग्रामसिंह जब जहां एक सोनामोहर रखता था उस वक्त उसकी माता आधी अशर्फि और उनकी पत्नी एक अशर्फि का चतुर्थ खंड रखती थी। इस प्रकार श्री भगवती सूत्र के सुनने में उन्होने ६३००० सोनामोहरें चढाई उसमें ३७०००हजार मोहरें और मिलाकर उस संपूर्ण १ लाख द्रव्यसे 'कल्पसूत्र' 'कालिकाचार्य कथा' नामक ग्रंथ सोनहरी अक्षरोंसे लिखाकर भंडारोंमे रखाए। यह घटना वि. सं १४५१ में हुई थी। कुमारपाल राजाके स्वर्गवासके बाद जब अजयपालने उत्पात मचाया; तब कुमारपालके बनवाये कार्योंका ध्वंस देखकर आम्रभट्ट ने प्राचीन और नवीन जैन ग्रंथोंको १०० ऊटोंपर लादकर जयसलमेर पहुंचाया।

सुना गया है कि वलभी नगरी के भंगके समय ३००००० श्रावक कुटुंब और कितनेक धर्माचार्य शास्त्र और जिन-प्रतिमाओंको लेकर मारवाड तर्फ चल निकले। उन्होंने मारवाड मे आकर जोधपुर के जिलेमें जो 'वाली' गाम कहा जाता है उसको आबाद किया, और अपने प्राणोंसे भी प्रिय मानकर शास्त्र और भगवत्प्रतिमाओंकी रक्षा करते रहे। कुमारपाल राजाने कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचंद्रसूरिजी के बनाए हुए

(१) अनेकार्थ संग्रह
(२) अनेकार्थ कोष
(३) अभिधानचिन्तामणि
(४) अभिधानचिन्तामणि परिशिष्ट
(५) अलंकार चूडामणि

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

(६) उणादि सूत्र वृत्ति
(७) उणादि सूत्र विवरण
(८) छन्दोऽनुशासन और वृत्ति

देशीनाम माला

(९) धातु पाठ और उसकी वृत्ति
(१०) धातुपारायण और उसकी वृत्ति
(११) धातुमाला
(१२) निघंटुशेष
(१३) बलाबल सूत्र वृत्ति
(१४) हेमविभ्रम
(१५) सिद्ध हेम शद्वानुशासन

(बृहद्वृत्ति और लघुवृत्ति)

(१६) शेष संग्रह नाम माला
[१७] शेष संग्रह सारोद्धार
[१८] लिङ्गानुशासन सटीक
[१९] लिङ्गानुशासन विवरण
[२०] त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र
[२१] परिशिष्ट पर्व
[२२] हेमन्यायार्थ मंजूषा
[२३] संस्कृत द्वाश्रय
[२४] प्राकृत द्वाश्रय
[२५] हेमवादानुशासन
[२६] महावीर द्वात्रिंशिका
[२७] वीर द्वात्रिंशिका

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

[२८] वीतरागस्तोत्र
[२९] पांडवचरित्र

इत्यादि अनेक ग्रंथोंकी अनेक प्रती लिखाकर राजाने भारतवर्षके अनेकानेक गाम नगरोंके ज्ञानभंडारोंमे रखवाई थी ।

इसके अतिरिक्त (११) अंग (१२) उपांग (१०) प्रकीर्णक, (६) छेद, (४) मूल, नंदि, अनुयोगद्वार, इन (४५) ही आगमों की एक एक प्रति सोनहरी अक्षरोंमें, और अनेक प्रतें स्याहीसे लिखाके मुपतिने खंभात, धोलका, करणावती, चंद्रावती, डूंगरपुर वीजापूर, प्रल्हादनपुर, राधनपूर, पादलिप्तपुर (पालीताणा) जीर्णदूर्ग, (जुनागढ) मांडवगढ, चित्तोडगढ, जयसलमेर, बाहडमेर, दर्भावती, वडोदरा, आकोला, उज्जैण, मथुरा, प्रमुख उत्तम उपयोगी स्थानेमें रखवादी थी ।

इसके आलावा—कर्णदेव, सिद्धराज, भीमदेव, वीसलदेव, सारंगदेव, वीरधवल सोमसिंह अदिराजाओंने भी जैन ज्ञानभंडारोंकी वृद्धिमें पुष्कळ मदद दी है ।

और मंत्री उदयन, बाहड, अंबड, वस्तुपाल, तेजपाल, कर्म्माशाह, समराशाह, छाडाशाह, मोहनसिंह, साजनसिंह आदि अनेक राजमान्य मंत्रियोंने तो अपनी संपत्तिका प्रायः उपयोग ज्ञान और जिनचैत्योंके अंदर ही किया है । परंतु बडे दुःखकी वात है कि देश और समाजके दुर्दैवसे कुमारपाल आदि के पुस्तक सैंकडो वर्ष पहले ही नष्ट हो चुके हैं। इसका कारण प्रायः प्रसिद्ध ही है कि जो लोग अपने प्राणोंको हाथकी हथेलीमें लेकर सैंकडों वर्षोंतक इधरसे उधर और उधरसे इधर मारे मारे फिरे हैं वह इन पुस्तकालयोंको सर्वथा कैसे बचा सकते थे !

कुमारपालके लिखाये पुस्तकोंका नाश तो उसके उत्तराधिकारी अजयपालने ही कर दिया था. ईस्वीसन ११७४–७६ में गुजरातके अजयदेव नामक एक शैवराजाने राज्यपर आतेही बडी निर्दयतासे जैनोंका

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

वध कराया, और उनके गुरुओंको भी मरवा डाला ऐसी दशामे वह उनके पुस्तकोंको जिन पर उस धर्मका आधार था कैसे छोड सकता था। विन्सेंट ए. एम. ए. का भारतका प्राचीन इतिहास ॥]

कुमारपालके बाद बहुत ग्रंथोंका संग्रह वस्तुपाल तेजपालने कराया था. सो उसका नाश अलाउद्दीनके अत्याचारोंसे हो गया।

परमश्रद्धालु जैन लोगोंने जो बचा लिये सो आज भी पाटण, खंभात, लींबडी, जयसलमेर, अमदावाद आदि शहरों मे हयात है।

[सन १९१६ जनवरीकी सरस्वतीमें 'पाटणके जैन पुस्तकभंडार' इस नामके लेखसे, और अन्यान्य प्रबंधोंसे मालुम होता है कि कुमारपालने २१ बडें बडे ज्ञानभंडार करवाये थे, कुमारपालके किये कराये सर्व शुभकार्योंके ज्ञान के लिये मेरा लिखा " हिन्दी कुमारपाल चरित " देखिये।]

संघभक्ति.

लोकेभ्यो नृपतिस्ततोपि हि वरश्चक्री ततो वासवः,
सर्वेभ्योऽपि जिनेश्वरः समधिको विश्वत्रयीनायकः।
सोऽपि ज्ञानमहोदधिः प्रतिदिनं संघं नमस्यत्यहो,
वैरस्वामिवदुन्नतिं नयति तं यः सः प्रशस्यः क्षितौ ॥ १ ॥

अर्थ—साधारण तौर पर देखा जाय तो चारही वर्णकी प्रजासे राजा श्रेष्ठ गिना जाता है.

राजासे भी सार्वभौम राजा (चक्रवर्ती) बडा है. क्योंकि (३२) हजार मंडलीक राजा उसकी सत्तामें है। राजा एक देशका स्वामी है, और चक्रवर्ति नरेश (३२) हजार देशोंका मालिक है। चक्रवर्तिसे इन्द्रमहाराज बडें है इस बातमे किसी प्रमाणकी आवश्यकता नही यह बात सर्व संप्रदाय प्रसिद्ध है!

और इन सबसे देवाधिदेव तीर्थंकर देव श्रेष्ठ है। तो भी आश्चर्यकी

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

बात है कि ज्ञानके सागर जिनेश्वर परमात्मा भी श्रीसंघको नमस्कार करते हैं। ऐसे श्रीसंघको आपत्तिग्रस्त जानकर देखकर जो जीव श्रीवज्रस्वामी की तरह सहायता देता है, वह सदाकाल धन्यवादका पात्र है।

श्री स्थुलभद्र स्वामी का श्रीयक नामक छोटा भाई था, और यक्षा आदिक ७ बहिने थीं। उन सर्व भाई बहिनोंने स्थूलीभद्र स्वामी के पीछे दीक्षा ली हुई थी। श्रीयक साधू तप करने मे कायर था। संवच्छरीके दिन बडी बहिन की प्रेरणासे उसने उपवास कर लिया था। दैव योग उसी दिन उसका मृत्यु हो गया। यक्षा को बडा पश्चात्ताप हुआ। उसने निश्चय किया कि मेरे कहने से साधु महाराज ने, शक्तिके न होनेपर भी तपस्या की इसलिये उसके प्राण गये तो ऐसे अनर्थ का पाप माथे आनेपर भी मै कैसे जी सकती हूं? अब मै भी अनशन करूगी। श्री संघने उसको हरतरहसे रोका परंतु उसने अपना सिद्धान्त अटल रखा। आखीर श्री संघने शासन देवीका आराधन किया; शासन देवीने श्रीसंघके आदेशसे उस साध्वी को भगवान् श्रासीमंधर स्वामीके समवसरण मे पहुंचाया। भगवद्देवने अपने श्री मुखसे फरमाया कि हे यक्षा! तेरा अध्यवसाय साधु को तपस्या कराने का था, उसके मारणे का नहीं। वास्ते तू निर्दोष है। इस बातको सुनकर साध्वीने बडा हर्ष मनाया और श्री संघके किये का-उसगके प्रभावसे शासन देवीने साध्वीको सही सलामत भरत क्षेत्रमें लाके रख दिया!

महाप्राण ध्यानके करते समय स्थूलि भद्र वगैरह साधुओं की वांचना के लिये जब श्रीसंघने भद्रबाहुसूरिको बुलाया, तब उन्होंने सिर्फ इतनाही जबाब दिया कि, श्रीसंघका फरमान शिरोधार्य है, श्रीसंघकी आज्ञा मुझे मान्य है, मैं जो कुछ कर रहा हुं सो श्रीसंघकी सेवाके लियेही कर रहा हुं, इतने पर भी अगर श्रीसंघ हुकम करे तो मै इस कार्य को

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

छोड कर वहां भी आने को तयार हुं । और यदि भगवान् श्री संघ साधुओंको यहां भेजे तो मै साधुओंको वाचना भी दूं. और मेरा आरंभ किया हुआ कार्य जो कि अब समाप्त होने आया है उसको भी पार पहुंचाऊं । इस मेरी प्रार्थना पर ध्यान देके पूज्य श्रीसंघ जैसा आदेश करेगा मै करनेको हरतरहसे तयार हूं । सोचना चाहिये कि चौद पूर्व धर भी श्रीसंघका कितना मान रखते हैं । इसके अलावा विष्णु कुमार मुनिको जब मेरु चूलापर समाचार मिला कि तुमको श्रीसंघ बुलाता है तो भर चौमासे में अपने ध्यान कार्य को छोड कर भरत क्षेत्र मे आये !

संघ यह समुदाय का वाचक शब्द है, इस जैन पारिभाषिक शब्द से—साधु (१) साध्वी (२) श्रावक (३) श्राविका (४) रूप चातुर वर्ण श्रीसंघका ग्रहण होता है ।

साधु साध्वी—' साधु ' यह शब्द ही मनोरंजक है, अमरसिंहने जहां अच्छे शुभ सूचक शब्दों का संग्रह किया है वहां लिखा है " सुन्दरं–रुचिरं–चारु–सुषमं साधु–शोभनम् "

शब्दशास्त्र–प्रणेताओने साधु शब्दकी व्याख्या करते हुए लिखा है कि " साधयति स्वपरकार्याणि इति साधुः ! " संसार व्यवहारमें भी इज्जत आबरूके साथ वणज करनेवालेको "साहुकार"कहते हैं । यह शब्द मागधी भाषाका है और संस्कृतसे बना हुआ है । मूल संस्कृत शब्द है "साधुकार" अच्छे कामोंका करनेवाला. जब कि साधु शब्द ही उत्तम है तो उसका अर्थ क्यों कनिष्ठ हो सकता है ? जिनप्रवचनमे साधु को संयमी कहकर बुलाया है । संयमीका अर्थ होता है संयमके धारक–संयमवान्, वह संयम १७ प्रकारका होता है । जैसे कि पांच आश्रवोंका त्याग, पांच इन्द्रियों-का निग्रह, चार कषायोंका त्याग, तीन दंडका विरति, इन (१७) वस्तु ओंको संयम कहते हैं ।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

किंचित् विवरण—हिंसा (१) झूंट (२) चोरी (३) अब्रह्म(४) परिग्रह (५) यह पांच आश्रव कहे जाते हैं ।

स्पर्शन (१) रसन (२) घ्राण (३) चक्षु (४) और श्रोत्र (५) ये पांच इंद्रियें कहा जाती हैं । इनके विषयोंसे बचना यह भी संयम है ।

क्रोध (१) मान (२) माया (३) लोभ (४) इस चौकडीको कषाय चतुष्क कहते हैं । इन चार ही कषायोंका त्याग करना यह भी संयम है । मनसे, वचनसे, कायासे, स्वपरका बुरा चिंतन करना उसको दंड कहते हैं । इन तीन ही दंडोंका त्याग सो भी संयम है। पांच आश्रवोंका त्याग (५) पांच इंद्रियोंका निग्रह (१०) चार कषायोंका त्याग (१४) तीन दंडकी विरति रूप (१७) जो धर्म साधुका है, वह ही साध्वीका है। साधु साध्वी की भक्ति (१) उनका बहुमान (२) उनकी श्लाघा(३) उनके उड्डाहका गोपन (४) यह चार प्रकारका विनय कहा जाता है ।

विशुद्ध हृदयसे की हुई मुनिसेवासे धनसार्थवाहके भवमे और जीवानन्दके भवमें श्री ऋषभदेव स्वामीने और नयसारके भवमे की हुई सेवासे श्री महावीर स्वामीके जीवने नयसार के भवमें जो तीर्थंकर पदरूप कल्पवृक्षका बीज उपार्जन किया था, उसमें कारण मुनि सेवाही था ।

ऐसे मुनिमहात्माओंको भोजन, वस्त्र, स्थान, काष्ठासन, औषध, भेषज पुस्तक, वंदना, नमस्कार आदि देनेसे दिलानेसे जीव अनंत पुन्य प्राप्त करता है ।

बाहु और सुबाहुके भव मे मुनियोंकी सेवा करके भरत और बाहुबलीके भवमें जो उत्तम फल श्री ऋषभदेव स्वामीके पुत्रोंको प्राप्त हुआ है वह प्रायः समस्त जैन जातिसे परिचित है ।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

हर्षका समय है कि जिन शासनमे चारित्र पात्र मुनियोंका आज स्वतंत्रवाद के समयमें भी मान है ।

परंतु साथमें इतना अफसोस भी है कि " साहूण सड्ढो राया " इस शास्त्रवाक्य को भुलाकर, श्री ठाणाङ्ग सूत्रमें कहे हुए " अम्मा पियसमाणे " इस मुख्य अधिकार वाक्यको भी याद न ला कर, जो जो व्यक्तियें श्रमणोपासक कहलाती हुई भी एक दूसरे साधु के पक्षमें पडकर अपने और अपने माने उन श्लाघाप्रिय मुनियों के ज्ञान दर्शन चारित्रमें वृद्धि के बदले हानि पहुंचात हैं उन गुरुभक्तोको चाहिये कि–" मेरा तेरा " इस भावनाको न रखते हुए सिर्फ गुणग्राहक ही बने रहें । शासनमे एक दूसरे का मतभेद होना स्वाभाविक है, परंतु उस बातका निर्णय करने के बदले पक्षापक्षी के जोशमे आकर शासनमूल विनय गुणको भूल जाना, एक दूसरे के साथ असभ्य अश्लील शब्दोसे पेश आना, यह तो किसी भी तरहसे शासनकी रीति नीति नहीं कही जा सकती । जिस जिन शासन को लगभग आधा संसार मान देता था, जिस के संचालक वीतरागदेव हैं, उस संप्रदायकी स्थिति आज अति शोचनीय हो रही है । बिचारे मिथ्या दृष्टि कहलाते वैरागी लोग तो १०–२० एकठे एक जगह बैठकर बोलेंगे—चालेंगे, खायेंगें—पीवेंगे; धर्म चर्चा करेंगे. परंतु आज एक पिता के पुत्र कहलाते हुए जैन क्षमाश्रमण एक मयानमे दो तलवारो के समान एक उपाश्रय मे न रह सकें, एक मडलीमें आहार व्यवहार न कर सकें, एक दूसरे को रास्ते जाते नमस्कार न कर सकें, खेदका समय है हिन्दु के पास मुसलमान आवे या रस्ते जाता मिले तो वह भी उसको घर आनेपर पानी पिलाता है, रास्ते जाता " साहिब सलामत " कह कहकर शिष्टाचार करता है, मगर हमारे जैन साधुओंका उतना शिष्टाचार भी नहीं । इससे बढकर शोक और क्या होगा ? ऐसी दशामे मातापिताकी उपमाको धारण करनेवाले श्रावको को फिर भी

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

याद दिलाना उचित समझा जाता है कि वह शासन प्रेमी शासनालंकार आनंद कामदेव के पदपर बैठे हुए श्रेणिक, संप्रति, कुमारपाल के स्थानापन्न सदा शासन रक्षक महानुभाव श्रावकों को उचित है, उनका फरज है कि बढते हुए कुसंपको—फैल ते हुए आपा पंथको रोकनेका प्रयत्न करें।

सुना जाता है कि "श्रीधर्मघोष सूरि" जीके समयमे १८ श्रावकों को अधिकार था, कि वीर शासनके साधु साध्वी श्रावक श्राविका जहां होवें वहां सब जगह उन (१८) श्रावको की सत्ता चले, जिस किसी का जो कोई धर्मवाद होय उसकी फिर्याद उनके पास आवे, उनका इन्साफ वह करें। उनके दिये इन्साफ को—उनके किये फैसले को कोई अन्यथा न कर सके।

हे शासनपति! हे हितवत्सल! हे करुणानिधि! वीर प्रभो! जो शान्तिका साम्राज्य आपने फैलाया था वह आज नामशेष—कथाशेषही रहगया है उसे फिरसे उज्जीवित करो। आप श्रीजीके भक्तोंके हृदयमंदिरोंमें से जो शमसुहृद् रूठा चला जा रहा है उसको फिरसे पीछे लौटाकर आश्रितों को उपकृत करो।

दीनोद्धार धुरंधर! आपके लगाए नंदनवनको उज्जडते देखके आपके ठहराये रक्षकरूप शासन देव क्यों उपेक्षा कर रहे हैं?।

हमे बडे हर्षके साथ कहना पडता है कि प्रभुका मार्ग तो विनय विवेकसें संपन्न है, उसमे तो गुणी के गुणकी पहचान है, गुणवानका कदर है। नीचे के एक दृष्टान्त से आप इस विषयको खूब तौरपर समझ सकेंगे।

सावत्थी नगरी के नजदीकके किसी स्थानका रहनेवाला 'स्कंदक" नामा तापस मनकी शंकाओंका समाधान करने के लिये श्रमण भगवान् महावीर के पास आया, प्रभु श्री महावीरदेव अपने शिष्य गौतम-

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

को कहते हैं " गौतम आज तुझे तेरा पूर्व परिचित संबंधी मिलेगा; गौतमने पूछा प्रभु ! वह कौन ? भगवान् कहते हैं 'स्कंदक तापस प्रश्नार्थ पूछनेको आ रहा है, अभी थोडी देरमे यहां आ पहुंचेगा ?"

गौतम स्वामी प्रभुसे पूछकर उसका सत्कार करने के लिये सामने जाते हैं । स्कंदक कों बडे प्रेमसे मिलते हैं, आदरपूर्वक उसको प्रभुके पास लाते हैं; स्कंदक प्रभुके पास आकर अपनी शंकाओंको पूछता है । वहां साफ लिखा है कि " स्कंदक को पास आए जानकर गौतम स्वामी फौरन अपने आसन कों छोडकर खडे हुए, स्कंदक के सामने गए, और बडे आनंदसे उसका स्वागत करते है "

[भगवती सूत्र शतक दूसरा, उद्देशा पहला.]

चार ज्ञानके धारक १४००० साधुओं के स्वामी गौतम गणधर एक तापस को आता देख उसके सामने जावे, उसका आदर सत्कार करें, स्नेहिले शब्दोमे उसकों स्वागत पूछे; यह शब्द क्या कहते हैं ? । इस प्रकरणसें यह एक उत्तम शिक्षा मिलती है कि " मनुष्यमात्रसे भ्रातृभाव रखो उनको ज्यों बने त्यों धर्मके अभिमुख करो परंतु पराङमुख न करो, " तूतू " करने से पशुजाति कुत्ता भी पूंछडी हिलाता हिलाता आके पाओमें गिरता है परंतु " दुर दुर " करने से दूर चला जाता है, तो मनुष्य अपमानको कैसे सहन कर सकता है ? इस लिये जीव मात्रसे उस में भी विशेष कर समानधर्मोंसे सहानुभूति ही रखना चाहिये ।

श्रावक—श्राविका

जैन संप्रदायके अनेक शास्त्रों मे " श्रावक " शब्दकी यह ही व्याख्या की है कि—जो जीवादि नव तत्वोंका, जाननेवाला हो न्यायोपार्जित धनको सात क्षेत्रोंमे खर्चनेवाला हो, कर्म्मदलिकों को आत्मासे जुदा करनेवाला हो, उसको ' श्रावक ' कहते हैं । इसी ग्रंथके किसी एक प्रकरणमें

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

श्रावक के पांच नियमोंका वर्णन हो चुका है; उसके उत्तरभूत ३ अनुव्रत, और ४ शिक्षाव्रत मिलानेसे १२ व्रत होते हैं, जो श्रावक धर्मका सर्वस्व है। इन बारां व्रतोंका सविस्तर स्वरूप उपदेश प्रासाद, जैनतत्वादर्श, गुणस्थानक्रमारोह हिन्दी, श्रावक-कल्पद्रुम, आदि ग्रंथोसे जाना जा सकता है। अब यहां एक बात और भी ध्यानमें रखने जैसी है कि-सुपात्र पोषणका संसारमें बडा प्रभाव वर्णित है। साधु साध्वीको उत्तम पात्र गिना है तो श्रावकको भी मध्यम पात्र तो गिना ही है।

॥ श्रावकके २१ गुण ॥

१ गंभीर होवे, परंतु क्षुद्र न होवे।
२ सर्व अंग संपूर्ण होवें।
३ शान्त प्रकृतिवाला होवे।
४ लोकप्रिय होवे।
५ सरलपरिणामी होवे। क्लेशी न होवे।
६ इसलोक पर लोकके भयसे डरनेवाला होवे।
७ अशठ होवे, परको ठगनेवाला न होवे।
८ दाक्षिण्यवाला होवे, परकी प्रार्थनाका भंग न करे।
९ लज्जावंत होवे, निर्लज्ज न होवे।
१० दयालु होवे दीन दुखीपर दया करे।
११ मध्यस्थ भाववाला होय, पक्षपाती न होय।
१२ गुणी जीवपर राग करनेवाला होय।
१३ सत्यधर्म कथाका कहनेवाला होय।
१४ सुशील-धर्मी परिवारवाला होवे।
१५ दीर्घदर्शी लंबा विचार करनेवाला होवे।
१६ पक्षपातरहित होवे।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

१७ वृद्धपुरुषोंकी सेवा करनेवाला होवे।

१८ गुणी जीवका विनय करे, अविनीत न होवे।

१९ किये हुए उपकारको याद रखे, भूला न देवे।

२० निलोभीपणे, इच्छारहित, परोपकार करे!

२१ लब्धलक्ष्य व्यवहार कुशल होवे।

एक बात और यहां विचारने लायक है कि—साधु महापुरुष तो अपने मन वचन कायासे संसारका उपकार करते हैं, परंतु संसारी जीव आरंभ परिग्रह में आसक्त है; इसलिये उससे वह कार्य बनना अशक्य है जो साधु कर सकता है। बाकी संसारी जीवसे भी अपने समानधर्मीका उपकार तो बन सकता है। संसारमें प्रसिद्ध है कि—

सरवर तरवर संतजन, चौथा वरसे मेह।
परमारथके कारणे, चारो धरे सनेह॥ १॥

सरोवर जलाशय, जगत का कितना उपकार करते हैं, वह संसार जानता ही है। तरवर—वृक्ष, यह भी प्रत्यक्ष रूपसे जगत के उपकारी हैं। नर्मदा नदी के किनारे पर—" कबीरवड " नामक एक वड है जो बडा विशाल, सघन छायाशाली है। सुना गया है कि वहां वर्ष वर्ष के बाद एकमेला होता है उसमे सिर्फ उस वडके आश्रय (६०००) छ हजार मनुष्य बडे आरामसे ठहर सकते हैं। बुद्धिवानोंको विचारनेका विषय है कि—जब एक वृक्ष जिसको संसारमे जड स्थिर स्थावर एकेन्द्री जैसे शब्दोंसे बुलाया जाता है वह छ—छ हजार मनुष्योको साता पहुंचा सकता है तो वह मनुष्य कैसा जो अपने आश्रित एक दो मनुष्योंको भी सुख नदे!।

संतजन—साधुपुरुष—और मेघ—वरसाद यह विश्वके आधारही हैं इस बात मे हेतु दृष्टान्त देना सूर्यको दीपक दिखाना है। इससे हमारा कथन

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

यह ही है कि गृहस्थ के पास लक्ष्मी ऐसी वस्तु है कि इससे वह बडा लाभ उठा सकता है ।

(१) वस्तुपाल तेजपाल को आज संमाज क्यों याद करता है ? उनकी जीवन चर्याका वर्णन करते हुए पूर्व मुनियोंने लिखा है कि—

जैनागारसहस्रपंचकमतिस्फारं सपादाधिकम्,
लक्षं श्रीजिनमूर्तयस्तु विहिताः प्रोत्तुंगमाहेश्वराः ।
प्रासादाः पृथिवीतले ध्वजयुताः सार्धं सहस्रद्वयं,
प्राकाराः परिकल्पिता निजधनैर्द्वात्रिंशदत्र ध्रुवम् ॥ १ ॥

वस्तुपाल तेजपालने सवापांच हजार जिन चैत्य बनवाये, एक लाख जिन प्रतिमाएँ बनवाई, ढाई हजार शिवालय करवाये, और ३२ दुर्भेद्य कोट बनवाये ।

इसके अलावा ५०० दान शालायें उनकी तर्फसे हमेशह चलती थी । ६४ बावडिये उन्होनें ऐसी विशाल तयार कराई थी कि जहां का शीतल स्वादु जल हमेशां हजारों मनुष्यों के तापको दूर करता था । पौषध शालायें, मठ, मंदिर, हजारों बनवाये कि जिनमें तापस लोग सुखसे निवास करते थे । ज्यादा गौर इस बात पर करने का है कि वह वर्ष में ३ दफा स्वधर्मी वछल किया करते थे, जिन में लाखों क्रोडो जैन धर्मियों के दुःख दरिद्र दूर किये जाते थे ।

पांच सौ पाठ शालाएं, फक्त पाठशालाही नहीं परंतु उनको शास्त्र कारोंने विद्यापीठ के नामसे अंकित किया है; विद्यापीठ एक मुख्य विद्यालय का नाम है कि जिसके सैंकडो नहीं बल्कि हजारों शाखा एं है ।

(२) दौलताबाद के रहनेवाले " जगसिंह " शाहुकार को अपने साधर्मी लोगोंपर बडा प्रेम था। वह खुद क्रोड पति धनाढ्य था । उसने

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

३६० समान धर्मि मनुष्यों को व्यापार में लगाकर अपने समान कोटि ध्वज बनाया था ! ! ! वाहरे जगसिंह तेरे होने को धन्य है। तेरे जन्म और जीवितको पुनः पुनः धन्य है ! धन्य है तेरे माता पिता को ।

(३) पाटण मे कुमारपाल के समयमे आभड शाह नामक प्रसिद्ध शाहुकार रहता था उसने एक क्रोड आठ लाख रुपया खर्च कर जिन शासन की शोभा मे वृद्धिकी थी । उसने उसमोटी रकमका अधिकांश सीदाते समान धर्मियों के उपकार में ही व्यय किया था । उस वक्त अभयकुमार जैसे और भी अनेक ऐसे धर्मी मनुष्य पाटण मे वसते थे ।

(४) मांढवगढ मे जब जैन लोगोकी भरपूर वस्ति थी उस वक्त वहां एक ऐसा रिवाज था कि जो कोई समान धर्मी गरीब हालत मे वहां आता उसे प्रतिघर से एक एक अशर्फि और एक एक लकडी घर बनाने के लिये दी जाती । इस से वह एकही दिनमे दरिद्र को तिलांजली दे कर लक्षाधिपति शाहुकार बन जाता था । विक्रम संवत् १२८३ मे नागपुर से श्री सिद्धाचलजीका संघ आया था । वस्तुपाल तेजपालने उनको बडे आदरसे अपने नगर मे बुलाया और भोजनादि से उनके सर्व संघ लोगो की भक्तिसेवा की । इतनाही नहि बल्कि उन सर्व मनुष्यों को उंचे आसन पर बैठाकर मंत्रीराजने अपने हाथसे सब के पैर धोये ।

" वस्तुपालः वस्तुपालः स स्तुत्यः सर्व साधुषु " यह वाक्य सर्वथा सत्य है—सर्वथा यथार्थ है, इस मे अंश मात्र भी अनृत नहीं ।

अब सोचना चाहिये कि हमारे नैत्यक आर नैमित्तिक सर्व कार्यों मे हमको यह ही शिक्षा दी जाती है कि " महाजनो येन गतः स पंथा " इस सोनहरी वाक्य को पुनः पुनः जिह्वासे उच्चारते हुए भी—वारंवार

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

कोनों से सुनते हुए भी अगर उसपर कुछ भी ख्याल न दें, कुछ भी परिशीलन न करें, तो भला हमने किया ही क्या ? समझा ही क्या ?

आजके समय मे सातही क्षेत्रोंमे से चैत्य १ बिम्ब २साधु ३साध्वी४ यह ही क्षेत्र समयानुसार पुष्ट हैं । सिर्फ घाटा है तो ज्ञान क्षेत्र, श्रावक श्राविका क्षेत्र इन तीन ही क्षेत्रों की सार संभालका है ।

ज्ञानके पुस्तकों का घाटा नहीं परंतु उनका फैलाव करनेवाले जैसे चाहिये वैसे थोडे हैं ।

ज्ञान पढानेकी संस्थाएँ हैं परंतु उनमे क्या पढाया जाता है ? जो पढाया जाता है वह बच्चोंकी जिन्दगी को सुधारता है या बरबाद करता है ? इन बातोंका निरीक्षण सूक्ष्म दृष्टिसे करने योग्य है ।

उसमे भी खास करके वर्तमान समय की स्थिति तर्फ देखकर श्री संघको चाहिये कि वह " श्रावक और श्राविका " इन दोनों क्षेत्रोंको बचावें । लाखों मनुष्य मूल के मोर जैनधर्मका परित्याग कर क्रिश्चियन होते जा रहे हैं । हजारों मनुष्य आर्य समाज हो रहे हैं । ऐसी दशामे हमारे समुदायमे गरीबोंके उद्धार का साधन नहीं । गरीबोंकी फर्याद का सुननेवाला कोई नहीं । उनको पेटभरके खानेको अन्न नहीं । पहननेको वस्त्र नहा, रहने का मकान नहीं ।

एक लाख जितनी पारसी कोम अपना कैसा उपकार कर रही है ? मुसलमान लोग किस तरह आपसमे मिल कर काम कर रहे हैं ? संसारमे किस वस्तु की कदर है ? इन बातोका परामर्श जहांतक नही किया जाता वहांतक समाजका दारिद्र दूर होना असंभव है ।

शरीरका जो अंग बिगडा होता है उसीका सुधारा करना उचित है । बिगडते सडने अंगका सुधारा हो जावेतो सारा शरीर बच सकता है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इस लिये हमारी श्रीसंघसे अंतमें यही विनती है कि जिस तरह जैन धर्म और जैन समजका पूर्व ही की तरह फिर भी अभ्युदय हो और महात्मा महावीर देवके जगत कल्याण कर जीवन और वचनसे जगत्का उद्धार हो ऐसा काम कर अपना और जगत्का कल्याण करनेमें कटिबद्ध होवे।

॥ तथास्तु ॥

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com